श्री गुरु ग्रन्थ साहिब

संकल्प एवं स[illegible]र्य



ज्ञान सिंह मान

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब
संकल्प एवं सौन्दर्य

ज्ञान सिंह मान

पुस्तक परिचय

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब शब्द रूप में अकाल पुरूष की पवित्र वाणी का संकलन है। यह पावन ग्रन्थ केवल सिक्खों के लिए ही नहीं अपितु समूची मानवता के लिए उदात्त मानवीय आदशों, श्रेष्ठ जीवन मूल्यों निर्मल विचारों, तथा परब्रह्म की सहज साधना का संगीतमय स्वरुप हैं 'आदि ग्रन्थ' नाम से भी विख्यात यह दिव्य संकल्प अद्वितीय राग स्पर्शो से उत्कृत है। इस पावन शब्द वाणी में सिक्ख धर्म के छह गुरु साहिबान के अतिरिक्त तत्युगीन तीस अन्य महापुरुषों संन्तों, भक्तों, सिद्ध-पुरुषो तथा भत्तगायकों की वाणी भी संकलिय है।

भक्ति भावना से अनुप्राणित श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की रागमयी वाणी समूची मानव जाति को आध्यात्मिक आलोक प्रदान करती है, लोक कल्याण और समाज सेवा का सरल मार्ग दर्शाती है तथा भेदभाव, आडम्बर, जातिवाद और अन्धविश्वासों में ग्रस्त मानव के लिए सद्भावना का सन्देश हैं यह पावन रागमयी वाणी अन्धकार में भटकते असहाय, दीन, दुःखी एवं सन्तप जनमानस का मार्ग प्रशस्त करती हुई उसे भव सागर से पार उतरने का दिव्य संकल्प प्रदान करती है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी
संकल्प और सौंदर्य

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी

संकल्प एवं सौंदर्य

Shri Guru Granth Sahib Ji
Sankalp Awan Sundarey.
by.

Gyan Singh Man.

डॉ॰ ज्ञान सिंह मान
पूर्व प्रिंसिपल, सरकारी कॉलेज
लुधियाना (पंजाब)

क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी
नई दिल्ली– 110 015

दो शब्द

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब शब्द रूप में अकाल पुरुष की पवित्र वाणी का संकलन है। यह पावन ग्रन्थ केवल सिक्खों के लिए ही नहीं अपितु समूची मानवता के लिए उदात्त मानवीय आदर्शों, सात्विक जीवन मूल्यों तथा परब्रह्म की सहज साधना का रागमय स्परुप है। आदि ग्रन्थ नाम से भी पूज्य यह दिव्य संरचना भारतीय निर्गुण भक्ति का एक अद्वितीय संगम है। इस पावन शब्द वाणी में सिक्ख धर्म के छह गुरुओं के अतिरिक्त भक्ति कालीन तीस अन्य महापुरुषों, सन्तों, भक्तों तथा भट्ट गायकों (भट्ट कवि) की वाणी भी संकलित है। निर्गुण भक्ति भावना से अनुप्राणित यह दिव्य ग्रन्थ समूची मानवता के लिए एक उच्च आदर्शमय जीवन का संदेश प्रदान करता है। इस रागमयी पवित्र संकल्प की संरचना सिक्खों के गुरु अर्जुन देव जी द्वारा सन में की गई थी। यह पवित्र वाणी अज्ञानता के अन्धकार में भटकते असहाय, दीन, दुःखी, एवं सन्तप्र जनमानस को दिव्य आलोक प्रदान करती है तथा भव सागर से पार उतरने का सहज एवं सरल मार्ग दर्शाती है।

हमारी प्रस्तुत कृति को इस स्वरूप तक सफलता प्रदान करने में जिन विद्वानों, दार्शनिकों, ग्रन्थकारों तथा मार्ग दर्शकों ने हमारे पथ प्रर्दशन किया उन के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते है। हम सहज मन से ऋणि है पंजाबी दुनिया

(i) श्री गुरु ग्रन्थ साहिब विशेष अंक भाषा विभाग पंजाब जनवरी–मार्च 1988।

(ii) गुरु ग्रन्थ साहिब–एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण डा॰ मनमोहन सहगल–भ॰ वि॰ पंजाब।

(iii) माया और मायावाद (डॉ॰ सेवा सिंह)।
(iv) श्री गुरु ग्रन्थ साहिब परिचय (श्री सरुप सिंह अलग)।
(v) सिक्खी महान – (श्री सरुप सिंह अलग)।
(vi) सिक्ख गुरुओं की शैक्षणिक देन (यूनिस्टार)।
(vii) मानव मूल्य व्याख्या कोश (डॉ॰ धर्मपाल मैनी तथा डॉ॰ कृष्ण गोपाल सिंह)।
(viii) गुरु ग्रन्थ साहिब–सम्पादन युक्ति–डॉ॰ सरबतजेन्दर सिंह।

लेखक अपने उन समस्त सम्यंक सूत्र का ऋणि और धन्यवादी है जिन्होंने अपने बहुमूल्य समय और प्रेरणादायक सहयोग से मेरा उत्साह वर्धन किया। मैं विशेष रूप से अभारी हूँ अपने चिर सहयोगी एवं अन्तरंग सुभाकाक्षी प्रो॰ यश पाल सिंह वर्मा जी का जिनके विशिष्ट स्पर्श के अभाव में मेरी कोई कृति अपने अंतिम आकार को ग्रहण नहीं करती। मैं हृदय से शुक्रगुजार हूँ अपनी धर्मपत्नी डॉ॰ वीणा ज्ञान सिंह (पी॰ एच॰ डी॰ डी॰ लिट्) को जो मेरी साहित्यिक सर्जना में समय–समय मूल्यवान संकेत देती हैं तथा हर अवसर पर प्रत्येक सुख–सुविधा प्रदान करती है, जो किसी भी लेखन की निरन्तरता के लिए अपेक्षित है। मैं अपने सत्त्वि कर्त्तव्य से विमुख हो रहा हूँ यदि मैं इस अवसर पर आस्मीय शिष्या कु॰ जगजीत कौर तथा कु॰ वंदना धीर को स्मरण नहीं करता जिनकी पूर्ण निष्ठा और सहयोग के अभाव में इस कृति की कल्पना मेरे लिए आकाश–पुण्य जैसा था।

अन्त में अत्यन्त श्रद्धाभाव से मैं क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी के प्रबंधक श्री बी॰ के॰ तनेजा जी के प्रति अभार व्यक्त करता हूँ जिन की निरन्तर प्रेरणा, उत्साह सद्भावना और सहयोग से यह रचना सहृदय पाठकों तक पहुँच पाई है, अस्तु

डॉ॰ ज्ञान सिंह मान
पूर्व प्रिंसिपल सरकारी
कॉलेज लुधियाना
पूर्व सदस्य
हिन्दी सलाहकार समिति
भारत सरकार

अनुक्रमणिका

पहला अध्याय

वाणीकार

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के वाणीकार

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त अनेक संत–महात्माओं,भाटों और महापुरुषों की वाणियाँ संगृहीत हैं। यहाँ हम उन वाणीकारों का सामान्य परिचय दे देना भी अनुचित नहीं मानते ।अतः काल क्रमानुसार लेखकों का परिचय प्रस्तुत हैः–

जयदेवः–

इनका जन्म बंगाल में बीरबल जिले के कदनूली गांव में सन् 1170 में हुआ। विश्व विख्यात कृष्ण श्रृंगार काव्य 'गीत गोविन्द' के प्रणेता होने के नाते आपको भारत के अतिरिक्त विदेश में भी खूब प्रतिष्ठा और मान्यता प्राप्त है। अपने समय के बंगाल के शासक लक्ष्मणसेन के पंचरत्नों में आपका नाम आदरपूर्वक लिया जाता था। आपके पिता श्री भोजदेव भी संस्कृत के अच्छे कवि थे। कुछ विचारकों के मतानुसार सन्त जयदेव, गीत गोविन्द–रचयिता जयदेव से भिन्न थे।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में आपके दो पद अपनाये गये है। राग गुजरी के अन्तर्गत लिया गया पद संस्कृतनिष्ठ और 'गीतगोविन्द' शैली का ही है, जबकि राग मारुवाला पद पुरानी पूर्वी हिन्दी में रचित कहा जा सकता है। इस पद में योगियों की शब्दावलि का खुलकर प्रयोग किया गया है।

शेख फरीदः

फरीद का जन्म खोतवाल जिला मुल्तान में सन् 1173 में हुआ। इनके पिता जमाल–उल–दीन सुलेमान और दादा शेख शैब सन् 1125 ई. में काबुल और गजनी में हुई अशान्ति में पंजाव चले आये थे। कहते हैं कि इनका विवाह दास वंश के किसी बादशाह की पुत्री से हुआ था। शेख फरीद बचपन में चपलता–वश नमाज में रुचि नहीं रखते थे ,परंतु इनकी माता मरियम ने शक्कर का लोभ दे–देकर इन्हें नमाज की ओर प्रवृत्त कर लिया और 16 वर्ष की आयु तक पहुँचते शेख फरीद'हाजी' और 'हाफिज' बन गये।

दिल्ली के प्रसिद्ध ख्वाजा कुतुब बख्तियार इनके गुरु थे। ख्वाजा जी की मृत्यु के बाद ही फरीद पाकपटन आकर रहने लगे थे। सन् 1226 में वहीं इनकी मृत्यु हुई और इनके सुयोग्य शिष्य निजाम–उल–दीन औलिया ने इनकी कब्र पर एक शानदार मकबरा बनवाया। जहाँ अभी भी मुर्हरम पर मेला लगता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में शेख फरीद के कुल 134 पद हैं–4'शब्द' और '130' श्लोक इनमें से भी वास्तव में 11 श्लोक तृतीय और पंचम गुरुओं द्वारा लिखित हैं। पंजावी साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है और प्रायः इन्हें पंजावी का सर्वप्रथम कवि कहा जाता है। इन्होंने वाणी में प्रभुप्रेम और हरि भक्ति पर ही जोर दिया है, इसलिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में इनकी रचना को उचित माना है।

त्रिलोचनः–

इनका जन्म सन् 1267 में शोलापुर जिले के बारसी गाँव में हुआ। ये संत नामदेव के समकालीन थे। इन दानों में एक वार्ता का वर्णन भी उपलब्ध है। इनके कुल के संबंध में मतभेद है–कुछ विद्वान इन्हें महाराष्ट्रीय ब्राह्मण मानते हैं तो कुछ इन्हें निश्चयपूर्वक वैश्य कहते हैं। जन्म कुल कुछ भी हो ,हमारा मत तो ब्रह्मानुभाव रखने वाले महात्मा होने के कारण इन्हें ब्राह्मण स्वीकारने को तैयार हैं। इनके कुल चार पद श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में सम्पादित हैं। इनमें एक पद ऐसा भी है,जिसमें मृत्यु समय की इच्छा के फल पर विचार किया गया है। शेष तीनों में माया, वेषाडम्बर और सांसारिक असारता की ओर संकेत है। इनकी मृत्यु का समय निश्चित तोर पर ज्ञात नहीं हो सका।

नामदेवः

जिला सतारा के नरसी–बमनी गाँव में सन् 1270 में इनका अवतरण हुआ। जाति से ये महाराष्ट्रीयन छीपी(शिम्पी दरजी) कहे जाते हैं। इनके गुरु विशोभा खेचर थे और ये पंडलपुरी विट्ठल के परम भक्त थे। बाद के जीवन में उन्होंने निर्गुण वास्तविकता को अपना लिया था और इतिहास साक्षी है कि उन दिनों जीवन में पंजाब में ही आकर बस गये थे। इनकी एक समाधि जो सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने बनवाई थी जिला गुरुदासपुर के गाँव घुम्मन में भी है। वैसे इतिहास इनकी मृत्यु पॅढ़रपुर में ही सन् 1350 में स्वीकारता है।इन्होंने गुरु नानक की भाँति दूर–दूर की यात्रायें की।

नामदेव परमभक्त और प्रेमी जीव थे कहते हैं कि भगवान स्वयं देह धारणकर नामदेव की कठिनाईयों का निराकरण किया करते थे। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में सम्पादित गुरुवाणी में शेख फरीद और कबीर के बाद इन्हीं की वाणी सर्वाधिक है। कुल 60 पद हैं,जिनमें अवतारो के रुप में आये परमात्मा का अस्तित्व गान भी है और निर्गुण ब्रह्म का निराकार रुप चित्रण भी प्राप्य है। नामदेव के इन पदों में निश्चय ही मराठी भाषा का स्वाभाविक प्रभाव है। इन्होंने मराठी में भी पर्याप्त रचना की है।

रामानन्द जीः

श्री रामानन्द द्वारा प्रचारित विशिष्टाद्वैत का उत्तर प्रदेश में संयुक्तिक प्रचार करने में रामानन्द प्रमुख भक्त रहे हैं। आपका जीवन काल लगभग सन् 1299 से सन् 1410 के बीच निश्चित किया गया है। दक्षिण की भक्तिधारा को उत्तर में लाने का श्रेय इन्हें ही है। आरम्भिक जीवन में तो ये छोटी जाति के जिज्ञासुओं का गुरु बनना स्वीकार नहीं करते थे,परंतु कबीर को शिष्य बना लेने के पश्चात इन्होंने जाति–पाति के बंधन तोड़ ड़ाले और पीगा सरीखे राजा के साथ–साथ सैन (नाई) ,धन्ना (जाट), रविदास (चमार) और कबीर (मुस्लिम) आदि को शिष्यों में बराबर स्थान दिया। वास्तव में रविदास और कबीर के ही कारण रामानन्द का नाम अधिक प्रख्यात हुआ है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में रामानन्द का केवल एक ही 'शब्द' है–'कत जाईये रे, घरु लागो रंग' इसमें कवि ने अन्तर में ही प्रभु के साक्षात और उससे प्राप्त परमानन्द की ओर संकेत किया है।

सधना और बेनी:–

ये दानों महापुरुष 13 वीं सदी ईसवीं के उत्तरार्ध में हुए। सधना सिंह के किसी प्रदेश के रहने वाले कहे जाते हैं, जबकि बेनी के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं। सधना कसाई का व्यवसाय करते थे,माँस बेंचते थे, परंतु स्वयं कभी जीव हत्या नहीं करते थे। ठाकुर जी की पूजा भी माँस तोलने वाले तराजू के पलड़े पर झुलाकर ही करते थे। इनके संबंध में कई दन्त कथायें प्रसिद्ध हैं। इनका केवल एक पद श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में उपलब्ध है,जिसमें इन्होंने सोदाहरण ललकार की है कि पाखण्डी और वेशधारी भक्तों की भी लाज प्रभु रखता है–यदि गीदड़ से ही डरते रहना हो तो सिंह–शरण लेने से लाभ ही क्या ?

बेनी जी के नाम से श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में तीन पद प्राप्त हैं।इसमें कर्मकाण्ड के विरोध में आत्मतत्त्व का दर्शन, माया के प्रभाव एवं मनसुख के कष्टों तथा निर्गुण की बड़ाई आदि विषयों पर इन्होंने समास शैली में सुन्दर सरस अभिव्यक्ति की है। रामकली राग में निर्गुण की बड़ाई लिखते समय इन्हों योगियों की शब्दावली का मुक्त प्रयोग किया है। कुछ विद्वानों ने इनके जीवन से सम्बद्ध खोज के निष्कर्ष रुप में इन्हें बिहारी और ब्राह्मण माना है।

रविदास:–

भक्त रविदास की जीवनावधि लगभग सन् 1348 से सन् 1514 ई. के बीच मानी जा सकती हैं। निश्चित समय अभी तक ज्ञात नहीं हो सका। ये बनारस के निवासी थे और चमार का धन्धा करते थे पीछे इन्हें कबीर का गुरु भाई और रामानन्द का शिष्य बताया जा चुका है। इन्हें अपने समय में ब्राह्मणों के हाथों पर्याप्त पीड़ित होना पड़ा था, इसीलिये इनकी वाणी में 'नीचजाति' के रक्षक भगवान को पुकारने के स्वर अधिक ऊँचे सुनाई पड़ते हैं। बाद में इनकी पूजा भक्ति और दन्त कथाओं के अनुसार कुछ घटनाओं को देखकर बनारस के विद्वान ब्राह्मण भी इनका सत्कार करने लगे थे। इनकी ख्याति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि कुछ विद्वानों के अनुसार राज्यस्थान में मेड़ता को महारानी मीराबाई और मेवाड़ की रानी झाली इनकी शिष्यायें थीं।

रविदास के 41 पद ग्रन्थ साहिब में संग्रह किये गये हैं। इन पदों की भाषा सर्वाधिक स्पष्ट और खड़ी बोली के निकट है। इनके काव्य में तीव्र

प्रेमांतिकता उपलब्ध है। अधिकतम रचना ईश्वर , माया , सृष्टि गुरु , नाम तथा प्रकृति से सम्बद्ध है। प्रभु पर किये मीठे व्यंग्य और चुटकियों से प्रभु के साथ इनका नैकट्य प्रतीत होता है।

कबीरः—

महात्मा कबीर का जन्म कहते हैं कि किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से बनारस में सन् 1398 में हुआ था। अपनी बदनामी के भय से उसने इन्हें लहर—तारा नामक तालाब पर फेंक दिया, जहाँ से नीरु—नीमा नामक जुलाहे दम्पति ने इन्हें उठाया और अपने ही परिवार में इनका पालन—पोषण किया। बचपन से ही यह भक्ति और प्रभु प्रेम में रस लेते थे , बाद में रामानन्द के शिष्य बने और विपरीत परिस्थितियों से लोहा लेते हुए तथा हिन्दू—मुसलमान, दोनों की कुरीतियों पर टीका—टिप्पणी करते हुए सदैव प्रभु प्राप्ति के सच्चे मार्ग का निर्देशन करते रहे।

कबीर मत— मतान्तरों , पंथों और सम्प्रदायों के विरुद्ध थे। फिर भी सन् 1518 में इनकी मृत्यु के पश्चात सेवकों ने कबीर पंथ नाम से एक सम्प्रदाय खड़ा कर लिया। विचित्र विडम्बना है।

कबीर हिन्दी के प्रसिद्ध सन्त कवि थे इनकी वाणी में अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में संग्रहीत कबीर के पदों में अधिकतर निर्गुण पर ब्रह्म की स्तुति एवं मायावश पड़े जीव को माया की त्रिगुणी फाँसी को काटकर ब्रह्म में लीन होने की प्रेरणा दी गई है। इनके कुल 292 पद और 249 श्लोक ग्रन्थ साहिब में संकलित हैं—यह संख्या ग्रन्थ में सम्पादित भक्तों की वाणी में सबसे अधिक है। इनकी काव्य भाषा में विचित्र मिश्रण सा है— अतः इसे सधुक्कड़ी कहा जाता है—

कबीर ने जीव को प्रेम का संदेश दिया है 'प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ने से ही ईश्वर उपलब्धि सम्भव है , ऐसी इनकी मान्यता थी। गुरु परम्पराओं की मान्यताओं से कबीर की धारणायें सबसे अधिक समानता रखती हैं। अहंत्याग, मन का संयम, नाम—जाप, गुरु भक्ति आदि विषयों पर कबीर और गुरु परम्परा में लगभग अभेद है।

कबीर उच्च कोटि के समाज सुधारक भी थे। दार्शनिक विचारों के साथ—साथ इन्होंने समाज की बुराईयों , ऊँच—नीच, जाति—पाँति, कर्मकाण्ड,

आडम्बर आदि कुरीतियों का विरोध किया। इन्होंने अल्लाह–ईश्वर , राम–रहीम में ऐक्य स्थापित किया और समानता , सदाचार नीति और पारम्परिक प्रेम के विचार प्रदान किये।

धन्नाः–

धन्ना जाति के जाट थे। इनका जन्म राजस्थान के धुआन नाम नाम के किसी गाँव में सन् 1415 में हुआ था। कृषि–व्यवसायी होने के कारण बड़े सरल चित्त और निष्ठावान थे। जनश्रुति है कि किसी ब्राह्मण को ठाकुर की पूजा करते देख इन्हें ठाकुर पूजा का शौक हुआ। तब इन्होंने ब्राह्मण से एक ठाकुर प्राप्त कर बड़े सरल और निरीह भाव से अपने खेतों पर आकर ,उसे रहट के ठण्डे पानी से स्नान करवा भोजन पाने की प्रर्थना की। परंतु यह गोल–मटोल काला पत्थर कुछ न बोला तब धन्ना को वास्तविक भावना का ज्ञान हुआ और उन्होंने अपनी सच्ची भक्ति के द्वारा साक्षात् में ठाकुर को भोग लगवाकर ही छोड़ा। आरम्भ के ठाकुर पूजने वाले धन्ना भक्त बाद में निर्गुणी महात्मा हुए और अपनी सरलता और निष्ठा का परिचय देते रहे। ये भी रामानन्द की शिष्य मंडली में से ही थे ।

इनके चार पद श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संग्रहीत हैं। इन पदों में रागात्मिका भक्ति का अत्यन्त मनोहर चित्रण देखने को मिलता है। राग धनासरी में धन्ना भक्त का एक पद भी मिलता है। संसार तो मृदुलता के रंग में 'आरती' प्रस्तुत करता है, परंतु इन्होंने जाटशाही के अनुरुप 'आरता' प्रस्तुत किया है। गोपाल तेरा आरता। जो जन तुमरी भगति करते ,तिनके काज संवारता।।

पीपाः–

सन् 1425 में इनका जन्म गुजरात की एक रियासत गगरौन गढ़ के राजकुल में हुआ था। स्वयं राजगद्दी पर बैठने के कुछ ही समय पश्चात् रामानन्द जी से प्रभावित होकर इन्होंने राज–पाट त्याग दिया और प्रभु–भक्ति में लीन हो गये। नाभादास जी की 'भक्तमाल' में इनकी उदारता और स्पष्टता की कई कथायें दी हुई हैं। कहते हैं कि ये आरम्भ में दुर्गा के भक्त थे और बाद में निरंकारी ब्रह्म के अनुभवी जीव बने। इनका केवल एक पद श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में है। इस पद में पीपा जी ने 'जो ब्रहमंडे, सोई पिंडे, जे खोजे

सो पावे ' कहकर मनुष्य को अपने भीतर ही परमात्मा की खोज करने की प्रेरणा दी हैं शर्त केवल इतनी ही है कि यदि कोई पथ–प्रदर्शक सच्चा गुरु मिल जाऐ ,तभी अन्तर की खोज सम्भव हो सकती है।''पीपा प्रणवे परम ततु है,सति गुरु होई लखावै।''

सेनः–

श्री रामानन्द जी की शिष्य–परम्परा में सेन का नाम भी सादर लिया जाता है। 15वीं शती के आरम्भ में रियासत रीवां के राजा के शाही नाई के रुप में इनका होना सिद्ध है। वैसे निश्चित तिथियाँ ज्ञात नहीं हो सकी। ये सिद्ध भक्त थे। भाई गुरुदास ने (वार 10) में उनके संबंध में एक जनकथा कही है,जिसके अनुसार जब एक दिन साधु संतों की सेवा में लीन सेन राजा की सेवा में उपस्थित नहीं हो सके तो प्रभु स्वयं सेन रुप धारण कर उनका कार्य भुगता आये। यह कथा इनकी सिद्धि का प्रमाण। रागधनासरी के अन्तर्गत इनका एक पद श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संगृहीत किया गया है। अन्य कवियों की धनासरी में की रचनाओं की तरह यह पद भी 'आरती' ही है, जिसमें परमानन्द का भजन करने की प्रेरणा उपलब्ध है।

परमानन्दः–

महाराष्ट्र के जिला शोलापुर के बारसी गाँव में इनका जन्म हुआ माना जाता है। यह मैकालिफ और सिक्ख विद्वानों का मत है परंतु हिन्दी शब्द सागर के रचयिता ने इन्हें कन्नौजवासी ब्राह्मण बताया है। इनकी भाषा से भी इन्हें एकदम महाराष्ट्रीयन मान लेने में हिचक होती है, अतः सम्भव है कि ये कन्नौज या पंजाब के और भी निकट किसी स्थान के हों। इनका समय अभी निश्चित नहीं किया जा सका तथापि लगभग 16 वीं शती के प्रथम दशाब्दों में खोजा जा सकता है। इनका केवल एक पद श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संगृहीत है,जिसमें इन्होंने सदाचार नीति, शुद्ध विचार धारा तथा अनन्य भक्ति का निकटतम सम्बंध बताया है। मनुष्य जब तक काम, क्रोध, लोभ, परनिन्दा का त्याग नहीं करता ,तबतक वह साधु–संगति में बैठ प्रभु की पुनीत कथा चलाने में अयोग्य है।

सूरदासः–

वात्सल्य रस सम्राट कवि सूरदास का जन्म सन् 1478 में दिल्ली के

निकट सीही नाम के गाँव में हुआ था। वे निर्धन सारस्वत ब्राह्मण थे और किसी कारणवश अंधे हो गए थे। श्री वल्लभाचार्य जी ने इनको अपना शिष्य बना लिया और ये श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन किया करते थे। इनकी मृत्यु वहीं चंद्र सरोवर तालाब के किनारे सन् 1583 में हुई। मैकालिफ की दृष्टि में ग्रन्थ साहिब वाले सूरदास नेत्रहीन सूर न होकर ,अकबरी शासन के संदीला प्रान्त के सूबेदार थे। पर ग्रन्थ साहिब में संगृहीत इनके पद की केवल एक ही पंक्ति'छांडि मन हरि विमुखन को संग 'निश्चय ही सूरसागर के रचयिता की पंक्ति है। अतः हम इस क्षेत्र में मैकालिफ एवं अन्य उन सिक्ख विद्वानों से किंचित भी सहमत नहीं, जो इस पंक्ति का लेखक सदौला का सूबेदार बताते हैं। प्रतीत होता है कि श्री गुरु अर्जुन देव जी ने सूरदास जी के इस पद को ग्रथ में जगह देनी चाही थी, परंतु इस पद का शेष भाग गुरु मान्यता के अनुसार न होने से उन्होंने केवल प्रथम पंक्ति लिखवाकर ही छोड़ दी। स्वयं इस पंक्ति के उत्तर में उन्होंने 'हरि के संग बसे हरि लोक' वाला पद कहा। इस पद के ऊपर स्पष्ट शीर्षक इस प्रकार'सारंग म.5' इस पद में भी सिआम सुन्दर जचिआन जु चाहत शब्द प्रज्ञा–चक्षु सूर के सूरसागर में उपलब्ध हैं। अन्त में सम्बोधन वाक्य में भी सूरदास मौजूद है इसलिये सम्भव है कि यह पद या तो सूर का ही कोई उपलब्ध पद हो या गुरु साहिब ने स्वंय उपर्युक्त पद के उत्तर में लिखा हो।

भीखनः–

इनके संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत उपलब्ध हैं। वैसे तो यह मुस्लिम सूफी के तौर पर प्रसिद्ध हैं परंतु इनकी रचना की प्रवृत्ति और भावना देखकर इन्हें हिन्दू महात्मा मानने वाले विचारक भी मौजूद हैं। मैकालिफ इन्हें लखनऊ जिले के काकोरी गाँव के वासी मानते हैं। इनका देहान्त सन् 1574 में हुआ था। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में इनके दो पद विद्यमान हैं, जिनमें इन्होंने नाम–महिमा की चर्चा की है। पहले पद में नाम को बुढ़ापे का एक मात्र अवलम्ब बताया है और दूसरे ने राम रत्न को पहचानने के लिये चतुर्दिक प्रभु साक्षात्कार का होना लिखा गया है।

मीराबाईः–

मेड़ता(राजस्थान) की प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवयित्री मीरा का केवल एक पद कुछ प्राचीन हस्त लिखित पोथियों में उपलब्ध है। कहते हैं कि जब भाई

बन्नों ने गुरु साहिब की आज्ञा के बिना ही गुरुदास लिखित मूल पाण्डुलिपि की नकल करवाई तो उसमें दो पद बड़ा दिये गये एक तो सूरदास की प्रथम पंक्ति,'छाड़ि मन हरि विमुखन का संग ' लेकर पूरा पद लिख डाला और दूसरा मीरा का 'मन हमारी बांधिऊ माई , कवलनैन आपने गुन' पद और जोड़ दिया। बाद में गुरु ग्रन्थ साहिब जी की जो नकलें भाई बन्नो वाली पोथी से हुई, जो भारत विभाजन से पूर्व मांगट में थी और अब बड़ौत जिला मेरठ में है, उनमें मीरा का शब्द है। परंतु मुद्रित गुरु ग्रन्थ साहिब में अपना श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की दो अन्य शाखाओं (1) गुरुदास लिखित पाण्डुलिपि और उसकी नकलें (,2) दशम गुरु वाली पाण्डुलिपि और उसकी नकलें) में मीरा को कोई स्थान नहीं दिया गया। वैसे मीरा सगुण भक्त थीं और कृष्ण के प्रति रागात्मिका –भक्ति के पद गाती थीं। इनके पदों में भावुकता , करुणा और प्रेमान्तिकता का अतीव आकर्षक रुप देखने को मिलता है।

श्री गुरु नानक देव जीः

पंजाब में भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक तथा पतनोन्मुखी हिन्दू जाति के समर्थ पथ –प्रदर्शक श्री गुरु नानक देव जी का जन्म शेखुपुरा (वर्तमान पाकिस्तान) के तलवंडी गाँव में सन् 1469 में 15 अप्रैल को हुआ था। आप गुरु परम्परा में सर्वप्रथम थे और पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष में जलती हुई जनता को प्रेम संदेश देने के लिये अवतरित हुए थे। आपके पिता मेहता कालू पटवारी थे आपकी माता सुश्री तृप्ता और पत्नी बटाला के बाबा मूला की पुत्री सुलक्खणी थी। कुछ समय तक आपने सुल्तानपुर के नबाब के मोदीखाने में भी कार्य किया परंतु वहीं से एक दिन भावावेश में अपनी धारणाओं के प्रचारार्थ यात्रा करने निकल पड़े। श्री गुरु नानक देव जी ने जाति–पाँति, कर्मकाण्ड और पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष का विरोध किया।सच्चे पूर्ण परमात्मा की खोज का मार्ग बताया,अहंकार–त्याग,गुरु की खोज और नाम जाप द्वारा सहज के मार्ग से प्रभु मिलन का विधान बताया , जिससें हिन्दू और मुसलमान दोनों बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने पाँच लम्बी यात्रायें कीं–भारत के तीर्थ स्थानों और मक्का–मदीना तक लिए और सब जगहों पर उचित उपदेश द्वारा भटके हुए जन–मानस को सुरुचिपूर्ण मार्ग दर्शाया। यात्राओं के अन्त में रावी नदी के किनारे गुरु जी ने करतारपुर नाम से एक गाँव बसा लिया और वहीं सपरिवार रहने लगे आप सन् 1538 में ज्योति–ज्योत समा गये।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में कुल 974 पद और 'श्लोक' गुरु नानक रचित हैं। इनमें विभिन्न विषयों की चर्चा है। मुख्यतः गुरु की प्रशस्ति, जीव ब्रह्म के संबंध में अकाल का रुप और स्थान, माया बन्धन काटने की प्रेरणा, निर्विकार शुद्ध मन से प्रभु नाम जपने को प्रोत्साहन आदि विषय लिखे गये हैं। श्री गुरु नानक देव जी ने प्रातः कालीन प्रार्थना के लिये 'जपुजी' की रचना की, जो आज सिक्ख सिद्धांतों का सार कही जा सकती है। विश्व को एक नवीन दृष्टिकोण, जो सासांरिक संकीर्णताओं और पारस्परिक खीज से अछूता था, देने के कारण गुरु नानक विश्व विख्यात सुधारक कहलाये और आज भी भारत की जनता इन्हीं के चरणों में अपनी श्रद्धा के सर्वाधिक पुष्प अर्पित करती है।

श्री गुरु अंगद देव जी :

जिला फिरोजपुर में सरायभट्टा के स्थान पर सन् 1504 में अवतरित हुए। गुरु बनने से पूर्व आपका नाम भाई लहना था और आप दुर्गा के परम भक्त थे ,जब आपका सम्पर्क गुरु नानक देव जी से हुआ, आपने निर्गुण भक्ति और प्रेमभाव में एक निष्ट अनन्यता पैदा कर ली। नानक गद्दी के उत्तराधिकारी बनने के लिये आपने श्री गुरु नानक देव जी द्वारा ली गई एकाधिक परीक्षाओं में सफलता पाई। जहाँ गुरु नानकक देव जी के पुत्र श्री चंद्र और लख्मीचंद्र सफल नहीं हो सके ,वहाँ भाई लहना स्थिर रहे और गुरु विश्वास के उज्जवलतम पात्र बने। सन् 1553 में आप सच्चखण्ड वासी हुए।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में आपके मात्र 62 'श्लोक' हैं। इनमें प्रेम और गुरु भक्ति की प्रधानता है। अपनी रचना में गुरु अंगद देव जी ने जीवों को गुरु ग्रन्थ पथगामी होने की प्रेरणा दी है। गुरु रुप में 15–16 वर्ष आप खडूर में रहे। इनका सबसे बड़ा कार्य गुरुमुखी वर्णमाला को, जिसका विकास धीरे–धीरे ब्राह्मी लिपि से हो रहा था, एक निश्चित रुप देने का था। इससे गुरु भक्तों में शिक्षितों की संख्या बढ़ी और धार्मिक साहित्य सुगमतापूर्वक उन तक पहुँच सकने में समर्थ हो गया।

श्री गुरु अमरदास जीः–

गुरु अमरदास गुरु परम्परा में तीसरे गुरु थे। आपका जन्म वासर के जिला अमृतसर में सन् 1479 में हुआ। आपके पिता श्री तेज भान कृषि का

कार्य करते थे और शुद्ध वैष्णव विचारों के भल्ला क्षत्रिय थे। सन् 1502 में आपका विवाह हुआ ,जिसके कालक्रमानुसार दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई। वैष्णव विचारों के कारण गुरु अमरदास तीर्थयात्रा और साधु सेवा किया करते थे। आप 70 वर्ष की आयु में गुरु अंगद देव के शिष्यत्व में अन्यतम सेवा करते रहे। नित्य प्रति दूर से जल लाकर गुरु जी के स्नान का प्रबंध करते संगीत की सेवा में रस लेते और गुरु आज्ञा को सर्वोच्च समझते थे। आपके सेवा भाव और अखण्ड विश्वास को देखकर ही गुरु अंगद देव जी ने सन् 1553 में आपको गुरुगद्दी सौंपी। लगभग 21 वर्ष आप गुरु गद्दी पर सुशोभित रहे और 95 वर्ष की आयु में सन् 1574 में शरीर त्यागा। गुरुकाल में आप अधिकतर गोइंदयाल में ही रहे और आपने चतुर्थ गुरु को गद्दी सौंपकर प्रभु चरणों में विश्राम किया।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में आपके कुल 907 पद और श्लोक हैं। इनमें रामकली राग में रचित 'अनंदु' आपकी प्रतिनिधि रचना है। इस रचना में आपके दार्शनिक और धार्मिक तत्वों की सविस्तार व्याख्या है और सच्चा आनन्द, हर्षोल्लास प्राप्ति का निर्देश दिया है। आत्मा–परमात्मा के आध्यात्मिक विवाह (मिलन) को ही आपने आनन्द कहा है। आजकल साधारण जीवन में किसी भी खुशी के अवसर पर आपके भक्त इस खुशी को प्रभु पद मानकर इस वाणी का पाठ करते हैं। विवाहादि में इसका विशेष स्थान है।'अनंदु' के अतिरिक्त आप के काव्य के मुख्य विषय अन्य गुरु साहिबान के समान ही हैं। गुरु भक्ति, अहम् त्याग,नैतिक जीवन और सफल मानव जीवन के निर्माण पर आपके अनेक पद उपलब्ध हैं।

गुरु रामदासः–

आपका जन्म चूना–मंडी लाहौर में सन् 1534 में हुआ ।गुरु गद्दी पर आसीन होने से पूर्व आप भाईजेठा के नाम से पहचाने जाते थे। आपके पिता सोढ़ी हरिदास बड़े धार्मिक विचारों वाले जीव थे। क्षत्रिय गुरु अमरदास जी की पुत्री बीबी भानी से आपका विवाह हुआ। काल–क्रमानुसार वे तीन पुत्रों –पृथ्वीचंद्र ,महादेव और अर्जुन की माता बनीं। गुरु भक्ति और सेवा ने आपके जीवन को इतना उज्ज्वल बना दिया कि सन् 1574 में आपको गुरुगद्दी के अधिकार सौंप दिये गये। आपने अमृतसर का मन्दिर और तालाब बनवाने का कार्य आरम्भ करवाया,सिक्ख इतिहास में ससनद पद्धति और दसवंध

पद्धति का श्री गणेश किया तथा सन् 1581 में अपने सबसे छोटे पुत्र को गुरु अर्जुन बनाकर गोइंदवाल में ज्योति–ज्योत समा गये। जनश्रुति है कि गुरु गद्दी पर रहने का यह 7 वर्ष का समय श्री गुरु अमरदास जी ने इन्हें अपनी आयु में से दिया था। श्री गुरु रामदास जी से गुरुगद्दी भल्लावेदी परिवारों में से हटकर सोढ़ी परिवारों में चली आई और बीबी भानी को दिये एक वरदान के अनुसार अन्त तक उसी परिवार में बनी रही।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में आपके कुल 679 पद और श्लोक हैं। आपकी वाणी में भावुकता और प्रेम प्रधान है। कई स्थानों पर आपने अलौकिक तत्वों को लौकिक उदाहरणों से पुष्ट भी किया है। आपकी शैली मधुर, सुगठित, और भाव–भीनी है।

गुरु अर्जुन देव :

आप चतुर्थ गुरु जी के छोटे पुत्र थे और अपनी योग्यता, आध्यात्मिक पहुँच तथा गुरु में अखण्ड विश्वास के कारण 18 वर्ष की आयु में ही गुरु पद पर आसीन हो गये थे। आपका जन्म गोइंदवाल में ही 15 अप्रैल सन् 1563 को हुआ था। आप सन् 1581 में गुरु पद पर सुशोभित हुए थे। गद्दी पर आते ही आपके लिये विरोध और कठिनाई का युग आरम्भ हो गया। 'तवारीख गुरु खालसा' के अनुसार आपकी पहली पत्नी की निःसन्तान मृत्यु हो गई थी जब आपको दूसरा विवाह करवाने को विवश किया गया। नये विवाह के बहुत समय बाद आपके यहाँ श्री गुरु हरगोविन्द साहिब का जन्म हुआ बालक का जन्म कठिनाईयों में वृद्धि करने वाला प्रमाणित हुआ। क्योंकि पहले तो पृथ्वीचंद्र आदि इस आशा पर सब सहन किये जा रहे थे कि उनका पुत्र ही उत्तराधिकारी होगा, परंतु श्री गुरु हरगोविन्द के जन्म से वह आशा निर्मूल हो चली तब उन लोगों ने न केवल गुरु अर्जुन जी के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने आरम्भ किये बल्कि बालक हरगोविन्द के जीवन पर भी अनेक आक्रमण किये।

गुरु अर्जुन जी ने अमृतसर का अधूरा निर्माण कार्य पूर्ण किया। स्वयं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का सम्पादन किया। पूर्व गुरुओं की वाणी को एकत्रित किया, भक्तवाणियों का संग्रह किया और फिर गुरु विचारधारा के मानदण्ड पर परख–परखकर भाई गुरुदास की सहायता से ग्रन्थ में लिखवाई। अपने को न्यायमूर्ति सम्राट कहलवाने वाला जहाँगीर गुरु अर्जुन जी के प्रति

न्यायनिष्ठ न रह सका और पृथ्वीचंद्र आदि की झूठी शिकायतों और अपने पुत्र के विद्रोह से खींजकर वह गुरु जी पर बरस पड़ा। गुरु अर्जुन जी को बन्दी बनाकर मुस्लिम धर्म या मृत्यु का विकल्प दिया गया। गुरु जी धर्म रक्षक थे। अतः उन्होंने धर्म छोड़ने की अपेक्षा शरीर को छोड़ना उपयुक्त माना। जहाँगीर की आज्ञा से गुरु जी पर भयंकर अत्याचार किए गये और अमानवीय कष्ट पहुँचाकर 30 मई सन् 1606 को लाहौर में आपकी हत्या कर दी गई। आप पंजाब की गुरु परम्परा में देश और धर्म पर न्यौछावर हो जाने वाले प्रथम निर्भीक जीव थे।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का सबसे बड़ा भाग आपने स्वयं रचा। कुल 2218 पद और श्लोक पंचम गुरु वाणी के ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। आपकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी और बेजोड़ थी। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब सरीखे वृहद काव्य का सम्पादन कर सकना ही आपकी प्रतिभा का प्रमाण है। आपकी वाणी के मुख्य विषय अकाल पुरुष, आत्मा, माया, गुरु और सदाचारी जीवन है। आपने अपनी कविता में अकाल के निर्गुण, सगुण रुप का निर्देश दिया है। गुरु को प्रभु का ही रुप स्वीकारा है तथा सदाचारी जीवन द्वारा माया से बचने की प्रेरणा दी है। आपकी दार्शनिक रुचि अद्वैत और विशिष्टा द्वैत की ओर प्रतीत होती है।

श्री गुरु तेग बहादुर जीः—

गुरु परम्परा के आप नौंवे गुरु थे। आपका जन्म अमृतसर के 'गुरु के महल' स्थान पर सन् 1622 में हुआ। आप गुरुं हरगोविन्द जी के सबसे छोटे और सर्वाधिक योग्य पुत्र थे। उन्होंने आपका नाम तेग बहादुर आपके शौर्य की भविष्यवद् कल्पना से ही रखा था और आपने 13 वर्ष की आयु में ही पिता के निधनकाल में मुगल सेना से लड़े गये युद्ध में पर्याप्त वीरता दर्शायी। परंतु गुरु हरगोविन्द ने इन्हें गुरु गद्दी नहीं दी थी, क्योंकि इनके द्वारा किये जाने वाले महान कार्य का समय स्यात् तब परिपक्व नहीं था। सन् 1664 में गुरु हरि कृष्ण ने अपने अन्तिम समय बाबा बकाला के संकेत से आपको गुरु गद्दी सौंपी। इन दिनों आपने आनन्दपुर बसाया। आप बड़े निर्भीक और शान्त स्वभाव के महामना व्यक्ति थे। भक्ति और नाम स्मरण द्वारा आपने डूबते धर्म की संरक्षा के लिये महान शक्ति संग्रह कर ली थी। समयानुसार धर्म और

देश की नैया पार लगाने के लिये आप सहर्ष अपना बलिदान देने के लिये औरंगजेब के दरबार में जा पहुँचे और हँसते– हँसते सन् 1675 में अपना सिर कटवा लिया। दिल्ली में शीशमंज का गुरुद्वारा इस महान धर्म रक्षक का स्मारक है। गोविन्द जी ने 'विचित्र नाटक' में आपके बलिदान के संबंध में लिखा है–

तिलक जंजू राखा कीनो बड़ो कलू महि सका।।
साधनि हति इती जिनि करी। सीस दिया पर सो न उचरी।।

गुरु ग्रन्थ साहिब में आपके श्लोक और पद सब मिलाकर कुल 115 है। सहजता, सरलता, भावात्मकता और विश्वास आपके पदों की मुख्य विशेषतायें हैं।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी(राय):–

आपका जन्म पटना नगर में सन् 1666 में हुआ था। उन दिनों आपके पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी पूर्व की यात्रा पर गये हुए थे। बचपन से ही आपको शस्त्र चलाने और कृत्रिम युद्ध के खेल बड़े प्रिय थे। अतः जब सन् 1675 में केवल 9 वर्ष की आयु में ही आप गुरु गद्दी पर विराजमान हुए। आपने अपने शिष्यों की निरीहता और भक्ति को शौर्य और शक्ति में परिवर्तित कर दिया। आपके मन में औरंगजेब और उसके शासन के अन्याय–अत्याचार के प्रति घृणा भर गई थी। इसीलिये,'सवा लाख से एक लड़ाऊ, तबहि गोविन्द सिंह नाम धराऊ' का कथन आपके संबंध में किया गया। आपने ही परिस्थितियों वश देश, धर्म और संस्कृति, भक्ति के साथ–साथ शक्ति का रुप 'खालसा' निर्माण किया। आयु भर आप औंरगजेब की सेनाओं ,पहाड़ी राजाओं और उनके भड़काये नबाबों ,सूबेदारों की सेना से लड़ते रहें। आप निर्भीक अडिग और अपार शक्ति के पुंज थे। जहाँ आप युद्ध भूमि में उतरे विजय ने आपका वरण किया। कुछ घरेलू दबाब और सैनिक उपेक्षा के कारण आनन्दपुर छोड़ने से आपको पर्याप्त हानि उठानी पड़ी। चारों पुत्रों का बलिदान देना पड़ा, फिर भी आपके माथे पर बल नहीं पड़े।

आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हुए। साहित्यिक रुचि के कारण आपने अपने दरबार में 52 कवियों को आश्रय दे रखा था। स्वयं भी अनेक रचनाऐं आपने ब्रजभाषा में की हैं। फारसी भाषा में औरंगजेब को लिखा आपका पत्र

'जफरनामा' आपके फारसी काव्य का उज्ज्वल प्रतीक है। आप क़ा समूचा काव्य संग्रह 'दशम् ग्रन्थ ' के नाम से प्रसिद्ध है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में आपका केवल एक ही श्लोक संगृहीत है। यह श्लोक भी म॰ 9 के 'श्लोकों' में शामिल है और अभी जब यह भी निश्चित नहीं कि श्लोक आपका ही है।विद्वानों के कथनानुसार गुरु तेग बहादुर जी के एक श्लोक के उत्तर में वह लिखा गया। दोनों श्लोक इस प्रकार हैं:–

"बल छुटिकाओं बंधन परे कछु न होत उपाइ।
कछु नानक अब ओट हरि गजि जिऊ होहु सहाय"।।53।।म॰9
" बलु हाआ होआ बंधन छूटि सभ किछू होत उपाइ।
नानक सब किछु तुमरे हाथ में तुम ही होत सहाई"।।54।।म॰10

इससे यह भी सिद्ध है कि श्री गुरु गोविन्द सिंह जी बड़े आशावादी और अखण्ड विश्वास के महापुरुष थे।

भाई मरदाना जी:–

भाई मरदाना श्री गुरु नानक देव जी का प्रसिद्ध शिष्य थे। वह गुरु नानक कुल का मिरासी था और गुरु जी के छुटपन से ही उनके साथ रहता था। गुरु जी की यात्राओं में हर बार वह साथ रहा और भजन–कीर्तन के समय रबाब बजाने का कार्य करता था। वह संगीत का अच्छा जानकार था। कम से कम गुरु नानक देव जी के शब्दों को बड़े प्यार और सरलता से गाता था। गुरु नानक देव जी से भाई मरदाना लगभग 10 वर्ष बड़े बताये जाते हैं। इस प्रकार उनका जन्म 1459 माना जाता है या माना जा सकता है। मृत्यु की कोई तिथि निश्चित नहीं है। विचार किया जाता है कि सन् 1519 के लगभग उन्होंने शरीर छोड़ा।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की राग बिहागड़ा की वार में भाई मरदाने के मात्र तीन श्लोक उपलब्ध हैं। इनमें श्री गुरु नानक देव जी की शैली की ही प्रधानता है। कुछ विचारकों का मत है कि ये श्लोक श्री गुरु नानक देव जी के ही हैं।

बाबा सुन्दर जी:–

बाबा जी गुरु अमर दास जी के परपौत्र थे। इनके पिता आनन्द जी गुरु अमर दास जी के दूसरे पुत्र बाबा मोहरी जी के पुत्र थे। इनके जीवन के

संबंध में कोई विशेष जानकारी तो नहीं परंतु इतना निश्चित है कि ये ईसवीं की 16वीं शती में उपस्थित थे। कहते हैं कि ये उदासी तबीयत के व्यक्ति थे और केवल प्रभु भजन में ही दत्त–चित्त रहते थे। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 6 ''पौड़ियों'' की इनकी एक रचना उपलब्ध है जिसे 'सद्ध' कहा जाता है। वास्तव में 'सद्ध' पंजाबी में बुलावे को कहते हैं। मनुष्य को ईश्वर के घर से बुलावा आना(मृत्यु) ही इसका विषय है। श्री गुरु अमर दास जी ने सुन्दर जी के पिता आनन्द जी के जन्म पर खुशी के अवसर पर पढ़ी जाने वाली रचना 'अनंदु' लिखी थी। उसी के उत्तर में सुन्दर जी ने विषाद के अवसर पर पढ़ी जाने वाली इस रचना का भाव यह है कि आनन्द हो या शोक, प्रभु के हुक्म से उसे झेलना चाहिये और हरि 'इच्छा समझ कर नाम–स्मरण में मग्न रहना चाहिऐ।'सद्ध' में कवि की प्रतिभा दर्शनीय है। कल्पना और भावुकता का सुन्दर समावेश हुआ है।

सत्ता डूम और राय बलवंडः–

इन दोनों के संबंध में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विचारक इन्हें गुरु अंगद देव जी के यहाँ कीर्तन करने पर नियुक्त बताते हैं और अन्य इन्हें गुरु अर्जुन देव के दरबार का गायक कहते हैं। 'तवारीख गुरु खालसा' तथा 'पंथ प्रकाश' में ज्ञान सिंह ज्ञानी इन दोनों के संबंध गुरु अर्जुन देव जी के दरबार से होने पर जोर देते हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में राग रामकली की एक (वार) पर इन दोनों का नाम मिलता है। राय बलवंड ते सत्ता डूम। इस वार में उन्होंने आठ पौढ़िया(पद) कहीं हैं जिनमें से पाँच क्षमा याचना के भाव से भरी है और शेष तीन में तीसरे ,चौथे और पाँचवे गुरु का स्वस्ति गान है। इसी से यह अनुमान लगाया जाता है कि गुरु अंगद देव जी की नाराजगी को दूर करने के लिये इन्होंने क्षमा याचना माँगी और बाद में जब तक वह जीवित रहे ,प्रत्येक गुरु की गद्दी पर आसीन होने के समय एक–एक पौढ़ी उनकी प्रशंसा में कहते रहे। परंतु यह नाराजगी कीर्तन का धन प्राप्त करने के लिये हुई थी और इतिहास साक्षी है कि कीर्तन की परम्परा में डूमों को निकालकर सिक्ख भक्तों को कीर्तन का अधिकार गुरु अर्जुन देव जी ने ही दिया था। गुरु अंगद देव जी ने नहीं। अतः बलवंड और सत्ता का गुरु अर्जुन देव जी के समय होना और उनसे क्षमा माँगना ही उचित प्रतीत होता है।

कुछ विचारक इन्हें भाई मरदाना की सन्तान मानते हैं। जाति से ये भी मिरासी थे ,इसलिये ऐसा सम्भव भी हो सकता है। इस वार की आठों 'पौढ़ियां' इन दानों भाईयों में से किसी एक की भी रची हो सकती हैं,परंतु जैसा कि वे कीर्तन एक साथ करते थे। सम्भव है कि उन्होंने गुरु जी के सम्मुख इसे इकट्ठे पढ़ा हो इसलिये वार पर दोनों के नाम आ गये हों। परंतु छठे पद से विषय बदलने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम पाँच पद एक के और दूसरे तीन पद एक के हैं। चौथे पद में बलवंड का नाम मिलता है और छठे पद में सत्त का ,इस पर यह भी सहज अनुमान हो सकता है कि प्रथम पांच पद बलवंड के होंगे और शेष तीन सत्ता के। वार में काव्यात्मकता की सरस अभिव्यंजना है। ऐतिहासिक तत्त्व भी उपलब्ध है।

इनके उपरांत हम शेष भाटों का परिचय देना अपेक्षित नहीं समझते। उनके संबंध में यह बता देना पर्याप्त होगा कि किसके नाम से गुरु ग्रन्थ साहिब में कितने पद उपलब्ध हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भाटों की संख्या के संबंध में दो मत हैं– कुछ विचारक उनकी संख्या ग्यारह मानते हैं और कुछ सत्रह नाम गिनाते हैं। हम दानों गुटों से सहमत हैं क्योंकि ग्यारह मानने वालों का दावा है –कलसहार,कल्ह अथवा जालपु जल्ह आदि नाम भी जुदा व्यक्ति नहीं हैं। उनका यह कथन अनुचित नहीं दिखता। भाटों में दास, सेवक आदि बिना नाम के होना सम्भव है। प्रभु के प्रति कुछ भी कहने वाला अपने को दास या सेवक कह सकता है। भाटों के नाम तो केवल उपलब्ध पदों में से खोजे गये हैं। अतः इस विषमता की खोज में समय गंवाने की अपेक्षा हम यहाँ दोनों प्रकार की गणना की तालिकाएँ देते हैं।

संख्या ग्यारह के भाट कविः–

1.	कलसहार	54 पद
2.	जालप	5 पद
3.	कीरत	8 पद
4.	सल्ल	3 पद
5.	भल्ल	1 पद
6.	नल	16 पद
7.	मथुरा	14 पद

8. गयंद	13 पद
9. भीखा	2 पद
10. बल्ल	5 पद
11. हरबंश	2 पद
कुल संख्या	123 पद

संख्या सत्रह के भाट कविः–

1. कल्ह	49
2. कलसहार	4
3. टल्ह	1
4. जालप	4
5. जल्ह	1
6. कीरत	8
7. सल्ल	3
8. भल्ल	1
9. नल्ल	6
10. सेवक	7
11. दास	14
12. जालान	1
13. गयंद	5
14. मथुरा	10+4
15. भीखा	2
16. बल्ल	5
17. हरबंश	2
कुल	123 पद

स्पष्ट है कि गुरुवाणी ,संतों , महात्माओं के पद गुरु घर एवं सम्बद्ध व्यक्तियों के काव्य के इतर गुरु ग्रन्थ साहिब में कुल 123पद भाटों के हैं। जिनकी गणना किसी भी रुप में कर ली जाए। हमने ऊपर कोष्ठक लगाकर, दोनों प्रकार की गणना का ऐक्य दर्शाया है, जिससे प्रतीत होता है कि दास

और सेवक नामों को हटाकर दोनों प्रकार की गणना शुद्ध ठहरती है। दोनों से संख्या में कोई भेद नहीं पड़ता।

वाणी के स्रोतः–

श्री गुरु अर्जुन देव जी को जब वाणी संकलन की अन्तःप्रेरणा हुई तो स्वभावतः उनके मन में यही प्रश्न उठा होगा कि वाणी कहाँ–कहाँ से उपलब्ध हो सकेगी। क्योंकि उस समय तक वाणी का कोई निश्चित संग्रह तो बनाया नहीं गया था, इसलिये वह विभिन्न लोगों के पास बिखरे हुए रुप में मौजूद होगी। अनेक सिक्खों को विभिन्न गुरुओं के कुछ पद मौखिक रुप में स्मरण होंगे, किसी के पास कुछ लिखित सामग्री का होना भी सम्मव है,जो उसने अपने पाठ की सुविधा से लिख ली थी। गुरुओं की वपौती के रुप में भी कुछ वाणी पढ़ी होगी। अतः उस सबको संकलित करने के लिये गुरु अर्जुन जी ने कहाँ–कहाँ और क्या–क्या प्रयत्न किए और किन–किन व्यक्तियों और स्थलों से वाणी संग्रह करने में वे सफल हुए–यही विषय यहाँ प्रस्तुत है।

इस संबंध में खोजबीन करने पर हमें सिक्ख इतिहास और गुरुवाणी साहित्य के अनेक विद्वानों के विभिन्न मत प्राप्त हुए हैं। सर्वप्रथम मत पश्चिमी विद्वान श्री अर्नेस्ट ट्रम्प का है। उसने आदि ग्रन्थ के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि भक्तों ने गुरु अर्जुन देव जी के पास प्रार्थना की कि वे गुरु नानक वाणी को परखकर विशुद्ध रुप से पृथक संग्रह कर दें, क्योंकि यह वाणी बड़ी प्रेरक और उदार है। दुर्भाग्यवश लोगों की मिथ्या रचना के उसके साथ मिश्रित हो जाने से वाणी का महत्व घटता जा रहा था। अतः गुरु जी ने सेवकों के पास उपलब्ध सब वाणियों को इकट्ठा कर लिया। गुरु नानक के अतिरिक्त अन्य तीनों गुरुओं एवं संत महात्माओं की समभावी रचनाओं को भी इकट्ठा किया और स्वयं एक–एक पद का निरीक्षण करके भाई गुरुदास को संकलन में क्रमानुगत संग्रह कर लेने को देने लगे। स्वयं भी वे पद रचना करते और उसे संकलन में स्थान देते ।

इस मत से दो बातें स्पष्ट होती है–

(1) गुरु अर्जुन देव जी को सिक्ख सेवकों की प्रार्थना पर वाणी संग्रह का ध्यान आया।

(2) गुरु जी ने सिक्खों में बिखरी हुई वाणी इकट्ठी की।

इन दोनों बातों की विवेचना अन्य मतों के साथ यथास्थान की जायेगी। दूसरा मत एम॰ ए॰ मैकॅालिफ और ज्ञान सिंह ज्ञानी का है। इनके मतानुसार गुरु अर्जुन देव जी ने सिक्ख मत की धारणाओं एवं सिद्धांतों को स्थायी रुप देने की इच्छा से एक ग्रन्थ के संकलन का विचार किया। यह विचार आंशिक रुप से सिक्खों की विशेष प्रार्थना पर आधारित था।

तीसरा महत्वपूर्ण मत श्री मुखबख्श सिंह का है। वे बाबा मोहन की पोथियों की कथा को ठीक ही मानते हैं। इस संबंध में उन्होंने 'प्राचीन बीड़ा' में लिखा है, बाबा प्रेम सिंह जी, होती मर्दान वाले ने ,जो गोइंदवाल के भल्ले–बावो के परिवार से ही है औंर गुरु अमरदास से चौदहवीं पीढ़ी में हैं,इन पोथियों को देखा और पढ़ा है। उन्होंने स॰ जी॰ सिंह को बताया कि भल्ला कुल में जो परम्परा चली आती है, उसके अनुसार ये दोनों पोथियाँ बाबा मोहन के पुत्र तथा गुरु अमर दास के पौत्र संहसर राम ने गुरु जी की आज्ञा से लिखी थीं। इनमें वहीं वाणी संकलित की गई हैं, जो प्रायः कीर्तन करते समय रबाबी लोग गाते थे। लोगों द्वारा कंठस्थ (शब्द) और निजी पाठ के लिये खुले पृष्ठों पर संगृहीत किये गए पदों को भी इन पोथियों में संकलित किया गया। बाबा प्रेमसिंह का यह भी विचार है कि गुरु नानक जी की वाणी, जो गुरु ग्रन्थ साहिब में एकत्रित है, यदि सारी नहीं ,तो उसका अधिकांश उन दो पोथियों में आ गया है।

चौथा अतीव प्रकाशमान और महत्वपूर्ण मत प्रो॰ साहिब सिंह का है। उनकी मान्यता है कि गुरु नानक पद्धति क्योंकि अपने पीछे गुरु गद्‌दी सम्भालने वाले में अपनी ही ज्योति जलाने की चर्चा करती है–अतः यह वाणी क्रमानुसार अपनी –अपनी वाणी सहित एक गुरु अपने बाद के दूसरे गुरु को देते रहे होंगे। इस तथ्य के प्रमाण रुप में प्रो॰ साहिब सिंह ने निम्न अतः साक्ष्य की ओर संकेत किया हैः–

1. गुरु अर्जुन देव जी ने बहुत थोड़े से ही श्लोक लिखे। अतः यह देखने के लिये कि नानक वाणी अंगदवाणी सहित गुरु अमरदास के पास पहुँची या नहीं हमें तृतीय गुरु की वाणी को देखना होगा।

(क) गुरु अंगद के श्लोक गुरु अर्जुन देव ने वारों की पौढ़ियों के साथ संकलित किए हैं। इन्हें ध्यान से देखा जाए तो पता चलता है कि गुरु अंगद द्वारा श्लोकोच्चारण से पूर्व उनके सम्मुख नानक वाणी की पौढ़ियां

मौजूद थीं। उदाहरणतः'आसा दी वार' म॰–1 पौढ़ी 22, के साथ उच्चरित प्रथ्म और तृतीय श्लोक म॰2 के विचार और शब्द चयन समान हैं। इससे प्रतीत होता है कि गुरु अंगद देव जी के पास'आसा दी वार' पहले से जरुर रही होगी।

(ख) 'मांझ की वार'म॰1 श्लोक 1:17 के साथ श्लोक म॰2, 2:17 और 2:28 देखिये। वे लगभग मिलते–जुलते हैं।

(ग) गुरु अमर दास जी की समूची वाणी नानक वाणी के उन्नीस रागों में से तिलंग और तुखारी राग छोड़कर शेष सत्रह में लिखी गई हैं। इससे अनुमान होता है कि गुरु नानक की वाणी गुरु अमरदास के पास मौजूद थी, तभी तो उन्होंने उन्हीं राग ध्वनियों पर पद रचना की।

(घ) राग आसा में नानक वाणी में 'पटी' लिखी गई है।इसी राग में गुरु अमरदास जी ने भी 'षटी' लिखी।सम्भवतः यह प्रेरणा उन्हें गुरु नानक 'पटी' से ही मिली हो। यथा–

आसा म॰1, पटी– मन काहे भूले मूड़ मना।जब लेखा देवहि वीरा तऊ पडिया। (1) रहाऊ।

आसा म॰ 3 पटी–मन ऐसा लेखा तूं की पडिया।लेखा देणा तेरे सिरि रहिआ। (1) रहाऊ

(ङ) रागवडहंस में गुरु नानक और गुरु अमरदास , दोनों ने(अलाहणिआ) लिखी है।

(च) 'आरु सोलहे' में तो केवल गुरु नानक और गुरु अमर दास की ही वाणियां हैं।

(छ) गुरु नानक ने लम्बी वाणियां'3 अंकार' और'सिध गोष्ठा' आदि राग रामकली में लिखी है। गुरु अमरदास ने भी अपनी लम्बी वाणी'अनंदु' इसी राग में लिखी है।

(ज) राग सिरी में सभी गुरुओं की वाणी के अधिकतर शब्द'मन रे, मेरे मन गा भाई रे अथवा मुधे' से आरम्भ होते हैं। यह समानता एक –दूसरे की वाणी से परिचित होने पर ही सम्भव है। पहरे म॰1,4,5 के आरम्भ में परस्पर मिलते हैं। यह मेल आकस्मिक नहीं।

(झ) गुरु अर्जुन देव का निम्न 'शब्द' सम्भवतः उसी वाणी के संबंध में

लिखा गया है जो पैतृक सम्पत्ति के रुप में मिली थी।इसमें वे वाणी को बाप–दादा का खजाना कह कर पुकारते हैः–

हम धनवंत भागन सच नाइ।हरि गुण सहज सुभाई।।1।। रहाऊ
पीऊ दादे का खोल डिठा खजाना।ता मेरे मन भईआ निधाना।।
रतन लाल जाका कछु न मोलु।भरे भंडार अखुट अतोल।। राग गऊड़ी।।

(ट) भाई गुरु दास ने गुरु नानक की एक साखी(वार 33) में गुरु जी के पास एक पोथी होने का निर्देश किया है। सम्भवतः यह पोथी गुरु नानक वाणी का निजी संग्रह ही हो सकता है।

निष्कर्षः–

अब हम उपर्युक्त सभी मतों और उनके निष्कर्षों पर विवेचना करना उपयुक्त समझते हैं। श्री ट्रम्प का यह कहना है कि वाणी सिक्खों की प्रार्थना पर संग्रहीत हुई, मूलतः अनुचित प्रतीत होता है। क्या स्वयं गुरु अर्जुन देव स्वयं अपने शिष्यों के प्रति अपने उत्तरदायित्व एवं परम्परा के सिद्धातों और धारणाओं के प्रति जागरुक न थे ? स्वयं उच्च कोटि के कवि होने के नाते वे निश्चय ही जहाँ अपनी वाणी का संग्रह करने के इच्छुक रहे होंगे, वहाँ पूर्वाधिकारी गुरुओं की वाणीसंकलित करने की भी उन्हें इच्छा हुई होगी। पुनः सिक्खों के पास से बिखरी वाणियों का संग्रह करने में भी कोई तर्क नहीं। वाणी, जो गुरु नानक देव जी के समय से ही गुरु घर में कीर्तन, पाठ, सत्संग के लिये अतीव महत्वपूर्ण मानी जाती थी, उसकी इस प्रकार बिखरने की सम्भावना ही नहीं हो सकती।

ज्ञानी ज्ञान सिंह द्वारा उद्धृत भाई बख्ता 'वाणी संग्रह' जिसमें न केवल प्रथम चार गुरुओं की वाणी ही संग्रहीत थी, बल्कि चारों के हस्ताक्षर भी विद्यमान थे एक कपोल–कल्पित सी वस्तु प्रतीत होती है, प्रश्न उठता है कि भाई बख्ते की पांडु–लिपि क्यों कर बनी ?क्या वह सब गुरुओं के साथ रहा था या केवल हस्ताक्षर करवाने आ जाया करता था ? यदि वह 1521 से 1581 तक प्रथम चार गुरुओं के पास रहा तो पंचम गुरु के समय वहाँ से चला क्यों गया ? यदि वह हस्ताक्षर करवाने को ही आता था तो वाणी उस तक कैसे पहुँच जाती थी। ये सब प्रश्न भाई बख्ता के 'वाणी संग्रह' के

अस्तित्व को ही संदिग्ध बना देते हैं। दूसरी बात यह है कि बख्ता ग्रन्थ में उपलब्ध साम्रग्री एवं उस युग में प्रचलित पदों की यथार्थता या कृत्रिमता की जांच स्वयं गुरु अर्जुन देव जी ने की। जब गुरु जी के आज्ञा पत्र संगतों को मिले तो श्री गुरु नानक देव जी के नाम से लिखी झूठी सच्ची कहानी लेकर वे उपस्थित हो गये। यहाँ यह स्वीकार कर लेना कि बिना पूर्व परिचय के ही गुरु अर्जुन देव जी ने उस वाणी में से असली–नकली का भेद कर लिया, केवल एक चमत्कार होगा, जोकि सिक्ख सिद्धान्तानुसार अनुचित होगा। अतः यह प्रमाण भी नहीं जँचता। मैकालिफ और ज्ञानी ज्ञान सिंह द्वारा की गई बाबा मोहन की पोथियों की चर्चा कहाँ तक शुद्ध है,ऊपर उद्धृत डॉ॰ मोहन सिह वाले पत्र से अपने आप स्पष्ट होता है कि यदि कोई ऐसी पोथियाँ भी थी तो वे श्री गुरु अर्जुन देव जी को नहीं दी गई। यदि वे गुरु अर्जुन देव जी को दी जाती तो डॉ॰ मोहन सिंह को गोइंदवाल में बाबा मोहन के परिवार में उन्हें देखने का अवसर क्योंकर मिलता ? यदि यह मान लिया जाए कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के संकलन के बाद वे पोथियां लौटा दी गई थी तो गुरु घर और उसके विरोधियों के ऐतिहासिक द्वन्द्व की सार्थकता अनाधारित ठहरती है। बाबा मोहन से ये पोथियाँ प्राप्त करने के लिये गुरु अर्जुन देव जी द्वारा पढ़े स्तुति गान'मोहन तेरे ऊँचे महल अपार' की साखी का आधार भी अशुद्ध ही प्रतीत होता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का संग्रह काल–क्रमानुसार ही होता रहा है। गुरु अर्जुन देव जी ने ग्रन्थ के सम्पादन के समय केवल उसे विशेष क्रम मात्र दिया है,जिसकी चर्चा आगे यथास्थान की जायेगी। वाणी के बिखरने और अनियमित रुप से संग्रहीत होने का प्रश्न भी तो केवल गुरु नानक वाणी के लिये ही सार्थक है। शेष तीनों गुरुओं ने कोई यात्रा नहीं की, कहीं संघर्ष–रत नहीं रहे। गुरु गद्दी प्राप्ति पर जिस स्थान पर डेरा डाला आयु–पर्यन्त वहीं भजन कीर्तन और अपनी मान्यताओं का सुयोग्य प्रचार करते रहे। अतः उन (गुरु अंगद देव, गुरु अमर दास, गुरु राम दास) की वाणियों के गुम होने या उनमें किसी प्रकार के मिश्रण हो सकने की सम्भावना कम ही दिखायी पड़ती है। निश्चय ही इन सब की वाणियाँ गुरु गद्दी के साथ ही पैतृक सम्पत्ति के रुप में उत्तराधिकारी गुरु को प्राप्त होती रही होगी। गुरु अर्जुन का राग गउडी के 'हम धनवंत भागन सच नाई' वाले पद में यही संकेत प्रत्यक्ष है रही

बात गुरु नानक की वाणी की। उनके विभिन्न शब्दों के साथ अनेक 'साखियों' को जोड़कर विद्वानों ने कुछ ऐसा प्रमाणित कर दिया है कि वे जहाँ भी जाते है ,वहाँ की घटनाओं से पराभूत होकर अकस्मात् रबाब की लय में अवसरानुकूल कोई ऐसा शब्द गा देते, जो काव्य की लय ,ताल, ध्वनि, छन्द गुण रस की सभी शक्तियों को संजोए हुए होता और बिना प्रयास एक उत्तम कोटि के काव्यांश का जन्म हो जाता। श्री गुरु नानक देव जी के जीवन में इस प्रकार के जादुई चमत्कार श्रद्धा और विश्वास की दृष्टि से शत–प्रतिशत सम्भव होते हुए भी विवेचक के लिये संदेहास्पद स्थिति उत्पन्न किये बिना नहीं रहते। फिर गुरु नानक देव जी की लम्बी वाणियों के लिये तो ऐसी साखियों घटनाओं और चमत्कारों की कल्पना के लिये भी स्थान नहीं रह जाता। वे किसी एक समायांश विशेष में पूरी की गई वाणियाँ हो ही नहीं सकतीं। अतः हमारी यह दृढ़ धारणा है कि श्री गुरु नानक देव जी भी कहीं शान्ति से बैठकर रचना करते होंगे। अभिप्राय यह है कि श्री गुरु नानक देव जी को घटनानुकूल उपदेशार्थ वाणी स्फूर्त नहीं होती थी, जैसा अधिकांश साखियों में दर्शाया गया है बल्कि गुरु नानक देव जी अवसरानुसार स्वरचित शब्दों का पाठ करते थे। क्योंकि वे समस्त वाणी पहले से ही रचते चलते थे, इसलिये विस्मृत होने के भय से उसका संग्रह भी जरुर करते होंगे। वही संग्रह उन्होंने गुरु गद्दी समर्पित करते हुए'सेली टोपी' के साथ पोथी रुप में गुरु अंगद को दिया था।

क्रमानुसार प्रत्येक गुरु अपने उत्तराधिकारी को पूर्व गुरुओं की पोथियाँ और स्वरचित वाणियां सौंपते रहे होंगे। हमारे इस अनुमान का प्रमाण गुरुवाणी म॰1,म॰2,म॰3 और म॰4 के शब्दों में भाव और भाषा की पारस्परिक समानता में खोजा जा सकता है।

भक्तों और भाटों की वाणियों के संग्रह के लिये हम श्री जी॰ बी॰ सिंह॰ के मत से पूर्णतः सहमत हैं। उनकी उपलब्धि उस समय के पंजाब में वर्तमान शिष्यों एवं भाटों की चालू पीढ़ियों से हुई होगी। यदि ऐसा न होता तो गुरु नानक से दो–दो, तीन–तीन सौ वर्ष पूर्व हुए संत महात्माओं की वाणियों में पन्द्रहवीं शती ईसवी की भाषा का प्रभाव न देखने को मिलता और न ही उनके स्वयं प्रकट होकर वाणी लिखवाने में किसी शंका की सम्भावना होती।

दूसरा अध्याय

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का सारतत्त्व

युगों–युगों से श्री गुरु ग्रन्थ साहिब मानव समाज के सर्वमुखीकल्याण के लिये अकालपुरुख का एक अनमोल तोहफा है,सच्चे अनमोल मोतियों का अद्‌भुत खजाना है,पवित्र विचारों का उत्तम भंडार है जो पाँचवे गुरु श्री अर्जुन देव जी महाराज की दिव्यदृष्टि की कृपा से वर्ष 1604 ई. को रुपमान हुए। सतगुरु के अनुसार यह पोथी परमेश्वर का थान है। सिक्ख के लिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब अकालपुरुख का शाब्दिक रुप है। इस ग्रन्थ में 36 महापुरुषों की शोभाजनित वाणी है जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों ,अलग–अलग धारणाओं धर्मों के साथ संबंधित है और जो 12 वीं शती से लेकर 17 वीं सदी तक भारत के विभिन्न इलाकों में कर्मशील रहकर अकालपुरुख की आराधना करते रहे और निष्काम रुप में समूची मानवता को आध्यात्मिकता, एकता, आपसी भाईचारे का संदेश देते रहे और प्रत्येक को जो भी उनके सम्पर्क में आया, धर्म के सच्चे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहे। चाहे ऐसा करने में उनको निजी तौर पर अनेक प्रकार की कठिनाईयों, अत्याचारों और तकलीफों को सहना पड़ा।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में कुल मिलाकर 5872 शब्द हैं जो 31 रागों में विद्यमान हैं। यह सारे राग उन जड़ बातों के साथ संबंधित हैं जो साधारणतः मानवीय जीवन के साथ विशेष रुप से जुड़े हुए हैं। सबसे आखिरी राग

जैवन्ती राग है जिसका गुरु वाणी में प्रयोग केवल गुरु तेग बहादुर ने ही किया है। जहाँ तक वाणी रचने का सम्बन्ध है,सबसे अधिक वाणी गुरु अर्जुन देव जी महाराज की है, जिन्होंने 30 रागों में 2218 शब्द उच्चारण किए जो इस महान ग्रन्थ में शोभायमान हैं। इसके उलट सबसे कम वाणी भक्त सूरदास जी की है जो केवल एक छोटी सी पंक्ति पर आधारित है। भक्तों में सबसे अधिक वाणी भक्त कबीर जी की हैजिनके मुख से उच्चारण किए गये 541 शब्द श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में सुशोभित हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की समस्त वाणी सरल पंजाबी तथा संत भाषा में होने के कारण साधारण मनुष्य की समझ में भी आसानी से आ सकती है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के सृजन का एक बड़ा कारण यह भी है कि रब्बी ज्ञान की बात आम मनुष्य की बोलचाल की भाषा में लिखकर उसको समझायी जा सके।

गुरु वाणी का यह विशेष निष्कर्ष है कि यह मन को स्थिरता प्रदान करती हुई शांत करती है और जीवन को एक विशेष प्रकार की खुशहाली प्रदान करती है जो पढ़े, सुनने वालों को जिन्दगी के झगड़ों झमेलों में सहायक होती है और जो उन्हें अपने आध्यात्मिक पंथ से विचलित नहीं होने देती। दूसरी ओर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, इच्छुक के मन में अपने अधिकारों और कर्तव्यों की चेतना जगाता है, लोक चेतना के साथ यह ग्रन्थ परिपूर्ण है। इसमें लोकजीवन की भरपूर प्रतिनिधिता है, जो लोक भाषा और लोक मुहावरों से सुसज्जित है। इसलिये यह समूची मानवता का ग्रन्थ है, जिसकी उस समय सख्त आवश्यकता थी, आज भी है और हमेशा बनी रहेगी।

यह ठीक है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की प्रमुख भाषा चाहे पंजाबी ही है, जिस पर संत भाषा का रुप चढ़ा हुआ है,परंतु विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित होने के कारण कई भक्तों की वाणी में मराठी,बंगाली, संस्कृत, ब्रज, फारसी, अरबी, आदि भाषाओं का प्रभाव ही दिखता है, जिसके साथ यह समस्त वाणी एक खूबसूरत भाषाई गुलदस्ते की तरह अपने आसपास को सुगन्धित करती है, जिसकी अनमोल सुगन्ध है, बेमिसाल निखार है और पवित्र प्रभाव है।

श्रीं गुरु ग्रन्थ साहिब के सृजना का बड़ा कारण यह था कि गुरु साहिबान की मौजूदगी में ही शरारती और स्वार्थी लोगों की ओर से गुरु वाणी

में कॉट–छॉट करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी,जिसके कारण सतगुरु चाहते थे कि यह 'घुर की वाणी' जैसे भाव में आई है,वैसे ही सम्भाली जाए।ताकि यह किसी प्रकार की मिलावट से सदा के लिये बच सके और अपने सच्चे असली रुप में प्रत्येक का पथ–प्रदर्शन कर सके।

श्री गुरु नानक देव जी मानवीय भाईचारे को शब्दगुरु का वरदान प्रदान करना चाहते थे ,जिसके साथ प्रत्येक मनुष्य का सर्वपक्षीय कल्याण हो सके। आपने अपने इस मनोरथ की पूर्ति के लिये सिद्धों के साथ भी बात की और जहाँ भी गये उन्होंने उच्च स्तर के संतों , भक्तो की वाणी इसी मनोरथ से इकट्ठी की और आपने ज्योति–ज्योत समाने के समय अपनी और संतों , भक्तों से एकत्रित की गई वाणी को बड़े आदर सत्कार के साथ दूसरे सतगुरु श्री गुरु अंगद देव जी को भेंट किया ताकि शब्द सृजन का कार्य जारी रहे जो पाँचवे सतगुरु के समय सम्पन्न हुआ और ऐसे मानवता को विश्व विचारधारा वाली इलाही और युग–युग स्थित गुरु जी की देन प्राप्त हुई।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भिन्न–भिन्न महापुरुषों की वाणी एकत्रित करके सतगुरु मानवीयता को सर्व साझां ग्रन्थ प्रदान करना चाहते थे ताकि मनुष्यता इस शब्द गुरु के साथ लगकर भौगोलिक, सामाजिक और आत्मिक सीमाओं को पार करके एक अकालपुरुख (परमात्मा) की सन्तान कहलवा सके और ऐसे परस्पर मेल–मिलाप,प्यार में वृद्धि हो सके और प्रत्येक प्रकार की दूरी समाप्त हो जाए।

जिन 36 महापुरुषों की वाणी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित है, उनमें से 6 सिक्ख गुरु साहिबान हैं, 15 विभिन्न धर्मों से संबंधित भक्त हैं और 4 गुरु घर के प्रेमी सेवक सिक्ख है और 11 उच्च कोटि के ब्राह्मण भट्ट है। ऐसे अनुभव होता है कि यह 36 इलाही पुरुष आध्यात्मिक उपदेश का संचार करने हेतु और समूची मानवता को आवश्यकतानुसार अगुवाई देने के पवित्र मनोरथ के साथ एक पार्लियामेंट लगाकर कल्याणमय प्रवचनों द्वारा आलिक उच्चता और अद्भुत परिपक्वता का वरदान दे रहे हैं। कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी भी देश , किसी भी धर्म से सम्बंधित क्यों न हो, उसको इन्सानी नस्ल के गुरु श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में से अपने हर सवाल का उचित समाधान अवश्य मिलेगा,क्योंकि यह समूची वाणी मानवीय हृदय की हर तड़प को बड़ी सुगमता सहित शान्त करने और उसको सहजता की ओर प्रवृत्त

करने के लिये विशेष तौर पर कमाल है।सह अस्तित्व और बहुलतावाद का संकल्प,गुरुवाणी की अद्‌भुत देन है, जिसने साबित कर दिया है कि प्रत्येक प्रकार के मनुष्य इकट्‌ठे विचरण कर सकते हैं और कथित नीच व्यक्ति भी अच्छे लग सकते हैं और इसके विपरीत उच्च ब्राह्मण भी अपने बुरे कार्यों के कारण जलील हो सकते हैं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में से आपसी सह–अस्तित्व की एक खूबसूरत मिसाल पेश है जो ऐसे हैं बाबा फरीद जी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी में पाँच समय नमाज पढ़ने का उपदेश देते हैं और मर कर कब्रों में पाये जाने की बात करते हैं जबकि सिक्ख अपने जीवन में नमाज नहीं पढ़ता और मृत्यु उपरांत उसे दफनाया भी नहीं जाता। पर फरीद साहिब की ओर से प्रकट इस सह–अस्तित्व का श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के सब उपासक पूरा–पूरा सत्कार करते हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की यह विचारों को सहन करने की खूबसूरती विश्वभाईचारे के लिये एक प्रेरणा स्रोत का दर्जा रखती हुई इलाही वरदान की आवाज है। यह हमारी खुशकिस्मती है कि यह हमें आसानी से सुलभ है और हमारी समझ में आ सकने वाली भाषा में विद्यमान है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी की एक विशेषता यह है कि यह उन महान आत्माओं के द्वारा इस संसार में प्रगट हुआ जिन्होंने अपने जीवन को हर हालत में परम श्रेष्ठ बनाये रखा और हर – इन्सान की प्रफुल्लता के लिए हर प्रकार के अत्याचारों के सामने भी कमजोर नहीं पड़े और आवश्कता पडने पर अपनी और अपने परिवार की कुरबानियों को देने में भी संकोच नही किया और न ही अकाल पुरुख के आगे कोई शिकायत की। वह सही अर्थो में मानस की जात को एक समझते थे।

मनुष्य की निष्काम सेवा करना और अकाल पुरुष का प्रेम भाव के साथ सिमरन करना उनके जीवन का लक्ष्य था। नेक कमाई करना बाँट कर खाना नाम स्मरण करना ऐसे सरल सबक थे ,जिनको वे अलग –अलग ढंगों से कंठ करवाते थे और वातावरण को व्यर्थ के भ्रमों , बहमों ,रस्मों –रिवाजों से साफ करने के लिए सदैव तत्पर रहें ।

संक्षेप को मुख्य रखते हुए यही कहा जा सकता है कि श्री गुरु जी ग्रन्थ साहिब की सारी वाणी में उन बहुमूल्य गुणों का अलग – अलग ढंगों से बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है जो वाणी पढनें – सुनने वाले प्राणी के हृदय

को ठण्ड़क पहुँचातें और निहाल करते हुए निर्मल उद्यमी ,सदाचारी ,परोपकारी और मानवता को प्रेम करने वाले मनुष्य की सृजना को विश्वसनीय बनाते हैं। गुरु नानक साहिब जो सिक्ख धर्म के अगुआ है इन्सान में अनगिनत खुबियों का संचार करने पर बहुत जोर देते हैं। वे तीन विशेषताएँ है – 1– नाम स्मरण की सच्ची कमाई की जाए। 2– अपनी नेक कमाई से वह एक इज्जतदार इन्सान की तरह जीवन यापन कर सके । 3– बाँट कर खाना ताकि वह अपनी नेक कमाई में से किसी गरजमंद की सहायता करके संसार के और मनुष्य के साथ भाईचारे की भावना को विकसित करके परस्पर सांझ पैदा करने में अपना योगदान कर सके। इन तीन विशेषताओं को धारण करने वाला मनुष्य श्री गुरु साहिब के अनुसार मेहनती अर्थात हक – हलाल की कमाई करने वाला , संतोष रखने वाला , समस्त मानवता को प्रेम करने वाला ,नम्रता ,प्रेम बराबरी की भावना में जीने वाला होगा ,जो अपने और दूसरों के अधिकारों के प्रति संचेत होगा। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब पर कुर्बान जाएँ जो ऐसे सच्चे मनुष्य की सृजना करते हैं।

नाम जपना :–

नाम जपना सिक्ख की जिन्दगी का मूल आधार हैं। इसके बिना उसके सभी कार्य व्यर्थ हैं नाम जपने से अभिप्राय परमात्मा के गुणों का गान करना है सिमरन करना है और उसकी छत्र छाया में विचरण करके उससे निरन्तर रुप में जुडना हैं। संक्षिप्त सार यही है कि नाम स्मरण करना परमात्मा के गुणों के साथ जुडना हैं। इससे आत्मिक सुख प्राप्त होता हैं और व्यर्थ के विचरण से पीछा छूटता है। अच्छे मनुष्य को परमात्मा के आदेश में रहते हुए तथा संसार में नेक कार्य करते हुए प्रभु नाम की आराधना को सदैव प्रमुखता देना शोभा देता हैं। यही कामयाब जिन्दगी का लक्ष्य है।

उद्यमी गृहस्थी जीवन की प्रेरणा :

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में उद्यमी जीवन पर बहुत जोर दिया गया है। ताकि मनुष्य अच्छा गृहस्थ इन्सान बनता हुआ अपने परिवार ,समाज ,देश ,भाईचारे तथा धर्म आदि के लिए योग्य और लाभदायक सार्थक भूमिका निभा सके। गुरुवाणी अनुसार परिश्रम करने से मन निर्मल होता है, हृदय शीतल होता है, मानसिक तृप्ति और आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। वह कमाई

सफल है जिससे सुख शान्ति मिले ,ऐसी कमाई नेक कमाई है, सच्ची कमाई है। गुरुवाणी में ठसपर अन्यतम भाव से चलने की प्रेरणा दी गई है। अन्धे और असूल रहित मायावाद को नकारा गया है। ऐसे तृष्णा से मुक्ति मिलती है और सब्र संतोष की वृत्ति को बल प्राप्त होता है।

बाँटकर खाना :—

श्री गुरु नानक साहिब के प्रमुख उपदेशों में नाम स्मरण और नेक़ कमाई करने, तत्पश्चात बाँटकर खाने पर जोर दिया गया है। बाँटकर खाना गुरुवाणी आधारित सभ्याचार का एक मानवीय सिद्धांत है। इससे परस्पर हमदर्दी और स्नेह विकसित होता है। व्यवहार की सहृदयता और सदाचार की सुन्दरता विकसित होती है जो धर्म का मूल आधार है। बाँटकर खाने वाला मनुष्य नम्र भावना वाला सहृदय नागरिक बना रहता है, दूसरों पर अत्याचार करने की भावना से बचा रहता है।

इस बाँटकर खाने की भावना से सर्वपक्षीय प्रेम में वृद्धि होती है और अनमोल भेंट प्राप्त होती है।

खाने–पीने की ओर आवश्यकता से अधिक ध्यान देना :—

देखने में आता है कि मनुष्य सदैव रसों की ओर प्रेरित रहता है। गुरुवाणी मनुष्य की इस कमजोरी को जानती हुई उसको सचेत करती है कि वह इस संसार में केवल खाने पीने के लिये ही नहीं आया है। उसके जीवन का मनोरथ प्रभुप्राप्ति है परंतु इस आशय को नज़अंदाज करते हुए वह स्वादिष्ट भोजन का गुलाम बना रहता है।

ऐसा समस्त खान–पान व्यर्थ है तो समझदारी इसी में है कि जीवन का मनोरथ ढूँढा जाए ताकि इस संसार में हमारा आना सफल हो जाए।

सबका भला माँगना और करना:—

सबका भला माँगने और करने में स्वयं का भला भी शामिल होता है। गुरुवाणी के अनुसार सभी मनुष्य एक अकाल पुरुख के बनाये जीव हैं। इनमें भेदभाव रखना अपने मन की संकीर्णता का खुलेआम प्रकटी करण है। गुरु का सिक्ख इस बुराई को अपने नजदीक भी आने नहीं देता।

गुरुवाणी के अनुसार चलने वाला मनुष्य परोपकारी है, दयावान

है,हमदर्द है और अकालपुरुष के निकट है। भलाई और परोपकार करना उसका स्वभाव है, दिखावा नहीं। यह अपने आप में स्थिर गुण है।

गुरुवाणी प्रेमी के लिये कोई वैरी (दुश्मन) नहीं कोई अजनबी नहीं। इस भावना की आज समस्त विश्व को आवश्यकता है क्योंकि समस्त संसार तंग सोच, नफरत की मंदभावना को ही बल दे रहा है और इस प्रकार दुनिया बारुद के ढेर पर बैठी है। गुरुवाणी सबका भला करने की भावना को योग्यबल प्रदान करती है।

हाथों से सेवा करनी :–

गुरु वाणी और गुरु इतिहास में सेवा का बहुत महत्व है। दूसरे, तीसरे, चौथे गुरु साहिबान ने निष्काम सेवा माध्यम द्वारा इलाही गुरुगद्दी को प्राप्त करने का मान प्राप्त किया। निष्काम सेवा सिक्ख के जीवन का बड़ा महत्त्वपूर्ण आधार है और सेवा सिमरण का अनोखा तालमेल है। सिमरण अकालपुरुख का करना है और सेवा उसके द्वारा बनाई सृष्टि की करनी है। सेवा वह साधना है जो अहंकार को तोड़ती है और यह सेवा मनुष्य को आंतरिक –बाहरी रुप से निर्मल प्रकाश से प्रकाशवान कर देती है।

निष्काम सेवा के लिये संतोष, सद्भावना, हमदर्दी, त्याग, मानवप्रेम की विशेष आवश्यकता होती है।

गुरुवाणी तो यहाँ तक बयान करती है कि जिस घर में मनुष्यों की साधु, संतों की , प्रभुसेवा का उत्साह नहीं बनता वह घर, घर नहीं, भूतों का निवास स्थान है। सेवा से हीन शरीर व्यर्थ है।

हुक्म मानना और उस परमात्मा की रज़ा में रहना :–

अकालपुरुख सर्व–समर्थ है। उसका आदेश हर स्थान पर चलता है कोई इसमें विघ्न नहीं डाल सकता। हम सब उसके आदेशानुसार ही जीते हैं। वह चाहे तो पल में उच्च स्तर के व्यक्तियों को निम्न और निम्न स्तर के व्यक्तियों को उच्च पद पर ला सकता है। उसकी हस्ती, शक्ति का कोई ठिकाना नहीं। इसीलिये मनुष्य को यही शोभा देता है कि उसके आदेश को प्रसन्नचित्त होकर स्वीकार करे ,इसी में सुख और शान्ति है।

प्रार्थना विनती का उपाय :–

प्रार्थना की भावना के साथ प्रभुप्रेम विकसित होता है। विनती, प्रार्थना

में सांसारिक सुख साधन माँगने के स्थान पर शुभ कर्म करने की शक्ति का माँगना उत्तम विनती है। प्रभु मिलाप के लिये विनती का भी योग्य है।

विनती (प्रार्थना) में आधार गुण यह है कि अहंकार को विकसित नहीं होने देती और विनम्रता और निर्माणता के गुणों के कारण मनुष्य हमेशा तनाव रहित रहता हुआ अपनी हस्ती को निम्न स्तर का समझता है और परमात्मा की शरण में रहना सुखदायक समझता है और यह भी समझता है कि उसका जीवन इस गुण के कारण सफल है।

अच्छा आचरण :–

गुरुवाणी आत्मिक तौर पर प्रफुल्लित, मानसिक तौर पर शांतचित्त, सदाचार के तौर पर सुदृढ़ व्यक्ति के सृजन पर जोर देती है। सच, परमात्मा का अपना गुण है,इसीलिये सच पर आधारित जीवन को स्वीकार किया है पर उससे भी ऊँचे सच आचरण रखने वाले को अच्छा समझा जाता है।

गुरुवाणी में इस बात का विशेष जिक्र मिलता है कि जिन अभिलाषियों ने सच को अपना रोजा या व्रत, सब्र, संतोष को अपना तीर्थ, जीवन की सूझबूझ और सिमरण को अपना स्नान, दया, परोपकारता को अपना देवता, माफ कर देने को अपनी पेज–16। वह मनुष्य आचरण के पक्ष में परमश्रेष्ठ है।

गुरुवाणी की संगत के प्रभाव से मनुष्य यह भी भली भांति जान जाता है कि उसे परनारी का सम्मान करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह परमात्मा की नजरों से नहीं बच सकता और अपने विनाश से भी नहीं बच सकता।

विद्या और विद्याशास्त्री कैसा हो:–

विद्या को तीसरा नेत्र माना गया है। जो मनुष्य को सभी पक्षों से विकसित करके उत्तम, समझदार, सूझवान, जिम्मेवार, परोपकारी मनुष्य बनाने का यत्न करता है, इसलिये अच्छी विद्या हमें परोपकारी और नेक व्यक्तित्त्व वाला बनाने वाली ही होनी चाहिए। विद्या का यही सही गुण है।

मन को समझाने और अच्छी दिशा की ओर लगाने के लिये भी विद्या रुपी ज्ञान कमाना लाभदायक है और आवश्यक भी है। ज्ञान के साथ बँधा

हुआ मन टिकाव में रहता है, उसको अच्छे बुरे की समझ हो जाती है,परंतु यह बढ़िया ज्ञान गुरु की कृपा द्वारा ही सम्भव है।

ईमानदार व्यवहार के विषय में प्रवचनः–

गुरु उपदेश पर चलते हुए सिक्ख को पूर्णरुप में ईमानदार रहना चाहिए। इसमें कोई असत्य बात नहीं कि वास्तविकता में गुरुवाणी के भावों के साथ जुड़ने में ही कल्याण है। गुरुवाणी के प्रेमी की कथनी और करनी में अन्तर नहीं हो सकता।

सच की महत्ता के प्रतिः–

गुरुवाणी निर्मल मन का संदेश देती है और इस पर अमल करने की प्रेरणा देती है। यह सच की शिक्षा गुरुवाणी के प्रारम्भ से शुरु होती है और अन्त पर जाकर ही सम्पन्न होती है।

दूसरों के अरमानों की कद्र के बारे में।

धर्म कर्म की रक्षा के लिये जान दे देना।

यह सन्तोष ही है जो मन को ठहराव प्रदान करता है और आत्मिक शान्ति के वातावरण की सृजना करता है। सब्र सन्तोष तो बिना चाहे कोई कितना भी धनवान क्यों न हो जाए ,तृप्त नहीं हो सकता। सिमरण के साथ जुड़ने पर ही कार्य की सिद्धि होती है।पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य आलसी हो जाए और परिश्रमी न रहे। गुरुवाणी इस आदत को प्रारम्भ से ही नकारती है।

व्यर्थ और गलत कार्यों से बचने के बारे में जानकारीः–

जति–पांति में भेदभाव करने वाले मनुष्य परमात्मा के नियम में विघ्न ड़ालने वाले हैं।इसीलिये वे उसके उपासक नहीं ,श्रद्धालु नहीं , प्रेमी भी नहीं हो सकते क्योंकि अकालपुरुख पामात्मा अलगाव नहीं जानता , दूरी नहीं जानता, प्यार ही जानता है और सेवा को पहचानता है।यदि कोई कथित नीच जाति वाला भगत उसको सच्चे दिल से स्मरण करता है तो वह परमात्मा की कृपा दृष्टि के प्रभाव से उत्तम पदवी को धारण करने वाला बन जाता है।

सामाजिक उत्थान और उसकी बलवत्ताः–

गुरु साहिब भलीभांति इस बात से परिचित थे कि उत्तम इंसान बनने के लिये जंगलों आदि में विचरण करने की आवश्यकता नहीं होती

बल्कि एक बलवान समाज की आवश्यकता होती है, जिसमें विचरण करके मनुष्य अच्छा सामाजिक प्राणी बनकर अपने जीवन को सार्थक ढ़ंग से आगे चला सकता है। इस सामाजिक निर्माण में एकता और बराबरी के एहसास की सबसे अधिक आवश्यकता है ताकि मनुष्य जाति–पांति या कर्मकाण्ड़ों के कारण किसी दूसरे मनुष्य से हीनता भाव ग्रहण करके कहीं अविकसित ही न रह जाऐ।बराबरी के इस महत्वपूर्ण अहसास को प्रकट करने के लिये गुरुवाणी में अनन्त उदाहरण हैं जिनको अलग–अलग रुपों में प्रकट किया गया है।

जति–पाँति और ऊँच–नीच के बंधनों का खुलेआम खण्ड़न करती हुई गुरुवाणी तो यहाँ तक बराबरी, सद्भावना और मैत्री का संदेश देती है, जिससें हर प्रकार की परस्पर दूरियाँ समाप्त हो जाती हैं।

परिश्रमी, प्रयत्नशील समाज :–

परिश्रमशील समाज उद्यमशील समाज है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में जिन महापुरुषों की वाणी दर्ज है (संकलित) है वह प्रमुखतया परिश्रमी थे। गुरुवाणी ने आध्यात्मिकता को भी नेक कमाई से जोड़ दिया है और रुहानियत की सृजना भी परिश्रम की बुनियाद पर ही की है। नेक कमाई करना प्रत्येक गुरु सिक्ख के जीवन का मूलाधार है। माँगने से हीनताभाव पैदा होता है,जमींर मरता है, उन्नति रुकती है, आलस बढ़ता है प्रत्येक ओर से अपमान होने का डर हमेशा बना रहता है।

गुरुवाणी के अनुसार समाज पर आश्रित आलसियों को अपना लेखा(कर्मों का हिसाब) देना होगा।

बलवान समाज के लिये परिश्रमः–

गुरुवाणी में नम्रता, सद्भावना, उद्यमशीलता, जैसे गुणों के संचार पर जोर दिया गया है ताकि इन गुणों को धारण करने से समाज में दया, सह्रदयता, परोपकारता आएँ। गुरुवाणी में निर्भयता और उद्यमी जीवन को ग्रहण करने पर भी बहुत जोर दिया गया है ताकि कोई अत्याचारी अपने जुल्मी व्यवहार या अत्याचारी व्यवहार के कारण समाज को तहस–नहस न कर दे।

गुरुवाणी नए समाज के लिये मनुष्य को 'जीओ और जीने दो' का

सुन्दर उपदेश प्रदान करती है। गुरुवाणी आधारित समाज में विचरण करने वाला मनुष्य , अहंकार से मुक्त है। गुरुमुख सज्जन पुरुष गुरुवाणी रुपी सच्चे प्रकाश की सहायता से लोभ, मोह, अहंकार को ढूँढ़कर जलाता है, अंतर हृदय को शांत रखता है, माया में विचरण करते , सच्ची कमाई करते वह माया की चमक–दमक और आवश्यकताहीन पकड़ से मुक्त रहता है। वह इलाही वाणी से जुड़कर अपना कार्य व्यहार करता है ऐसा करके वह दरगाह में सम्मान का अधिकारी बनता है।

चलायमान संसार में बसना:–

गुरुवाणी अनुसार इस चलायमान संसार में कुछ भी स्थिर नहीं। जो कुछ दिख रहा है, वह नाशवान है। इसलिये ज्यादा सांसारिक मोह से संकोच आवश्यक है। केवल परमात्मा ही ऐसी शक्ति है जो मौत से परे है और समय के प्रभाव से रहित रहकर सदैव नया ही रहता है। सूरज, चाँद, तारे कुछ भी स्थिर नहीं है। परिवर्तन ही संसार का नियम है। इसलिये मनुष्य का यह कर्तव्य बनता है कि इस सदा तब्दीली में रहने वाले संसार के स्वभाव को पहचानते हुए, वही कर्म करे जो परमात्मा को भाते हों और सामाजिक जीवन को सदाचारता और आध्यात्मिकता के क्षेत्र में परिपक्व कर सकें।

सुख–दुख में एक समान रहना:–

सुख–दुख जीवन के साथी है। जीवन के संघर्ष में इन दोनों के साथ जीवन का सम्पर्क बना रहता है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक दुखों का प्रसार प्रत्येक ओर है। अतः गुरुवाणी दुखों को भी अकालपुरुख की देन समझकर सब्र संतोष के साथ सहन करने की प्रेरणा देती है।

इस दुख को दूर करने के लिये गुरुवाणी में अनेक उपाय मिलते हैं। परमात्मा के स्मरण से सब दुख दूर हो जाते है। जो प्रभु का स्मरण करता है ,वह रोगरहित रहता है।

परमात्मा का नाम ही राम रामायण है और यह राम रामायण दुःखों कलेशों का नाश करती है। यह सच्चा नाम ही समस्त दुःखों की दवा है।

सुख की तलाश:–

संसार में प्रत्येक मनुष्य सुख की तलाश करता है। इन सुखों की

प्राप्ति के लिये वह जीवन भर दुनियादारी के झमेलों में फँसा रहता है। इन सुखों की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन नई से नई भटकन का शिकार होता है। गुरुवाणी अनुसार उस परमब्रह्म में लीन होने से सदीवी सुख प्राप्त होते हैं, दुःख कलेशों का नाश होता है,आत्मा स्वच्छ, निर्मल हो जाती है। परमात्मा को भूलकर मस्त रहने वाला व्यक्ति अवश्य ही तन रोगी हो जाता है।

अकालपुरुख का स्मरण करने और उसके जीवों की निष्काम रुप से सेवा करने से समस्त सुखों की प्राप्ति होती है और समस्त कार्य सफल होते है।

प्राकृतिक स्रोतों का आदर सत्कारः–

परमात्मा ने वरदान रुप में हमें जीवन जीने के लिये स्वच्छ हवा, अमृत जैसा जल, माँ जैसी धरती और अनमोल वनस्पति दी हैं , अतः हमारा भी यह कर्तव्य है कि हम इनकी पूरी सम्भाल करें। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में भी श्री गुरु नानक देव जी ने इन कुदरती स्रोतों को पूरा–पूरा सत्कार देते हुए हवा को 'गुरु' का दर्जा; जल को सबका 'जननहार पिता' और धरती को 'माँ' का सत्कार दिया है।

उक्त सभी साधन महत्वपूर्ण होने के कारण इन्हें गुरु वाणी में सत्कार दिया गया है ताकि प्रत्येक मनुष्य इन सब स्रोतों का समझदारी से प्रयोग कर सके, इनको प्रदूषित न करके इनके प्राकृतिक रुप को न बिगाड़े, बल्कि इनका भलीभांति प्रयोग करके अपनी अच्छाई का सबूत दे।

मानवतावाद, भाईचारे और अंतर्राष्ट्रीय भावना का संदेशः–

गुरुवाणी समस्त मनुष्यता को एक अकालपुरुख की संतान समझती है। इसलिये गुरुवाणी अनुसार सभी मनुष्य उस परमपिता परमात्मा की संतान हैं।

गुरुवाणी मनुष्यता का सदैव भला मांगती है ,चाहे यह भला किसी भी धर्म या विचारधारा के द्वारा क्यों न हो। विश्वव्यापी सद्भावना के लिये गुरुवाणी क्षमा, हमदर्दी और सच पर आधारित जीवन का उपदेश करती है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में सबके लिये सुख मांगने की ताकीद है, किसी का बुरा करना तो एक ओर रहा ,गुरु शब्द द्वारा उस बुराई को मन

में लाने की भी मनाही है। इस प्रकार की नीति पर चलने से समस्त दुखों से छुटकारा मिल जाता है। गुरुवाणी आधारित गुरुसिक्ख को यही समझाया गया है कि उसने बुराई के साथ विरोध करना है और सबको प्रेमपूर्वक गले लगाना है।

विशालचित्त इंसान का सृजन :–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी हमें विशालचित्त इंसान बनाते हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी सर्वमानवता के इलाही गुरु हैं। इस ग्रन्थ के सृजन में भी अकालपुरुख ने विश्वव्यापी विशालता का वरदान देते हुए उसमें जहां 6 सिक्ख गुरु साहिबान की वाणी को शोभायमान किया है उधर उसमें 15 भक्त, 4 गुरु घर के सेवक और 11 भट्ट भी सुशोभित कर दिये हैं। इन 15 भक्तों में कई हिन्दू हैं,कई मुसलमान और कई कथित ऊँची–नीची जाति वाले महापुरुषों की वाणियाँ हैं। वे भारत के अलग–अलग इलाकों में रहते और अपनी अपनी क्षेत्रीय भाषा का खूबसूरत प्रयोग करते हैं। इस विशाल अनेकता को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब द्वारा ही एकता के सूत्र में पिरोया गया है। यह पवित्र वाणी ही सबका गुरु है ;शब्द रुपी गुरु, जो हर किसी का सही रुपों में पथ–प्रदर्शक हैं।

अंतर–धर्म संदेशः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की अंतर–धर्म संदेश देने की शानदार और दूरदृष्टिता भरी सोच है,जिसके अनुसार हर किसी को सही मार्ग पर चलने की स्पष्ट प्रेरणा प्राप्त होती है। किसी भी धर्म का व्यक्ति श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के विचारों को पढ़कर सहज ही यह सोचने लग पड़ता है कि यह खासतौर पर उसको सुधारने और संवारने के लिये लिखे गए हैं।

अच्छा मुसलमान कैसा होः–

अच्छा मुसलमान कहलवाना बड़ा ही कठिन कार्य है , क्योंकि सच्चा मुसलमान वही है जो प्रभु के भक्तों के धर्म को मीठा करके गाये और अपने धन–दौलत पर अभिमान न करे।

गुरुवाणी के अनुसार सच्चे मुसलमान की मस्जिद ,उसके अंदर की दया होनी चाहिए हक, इंसाफ, नेकदिली उसका पवित्र कुरान हो ,शराफत, नेकदिली उसकी सुन्नत हो ओर सच्चाई भरपूर व्यवहार उसका रोजा हो ,

तो वह मुसलमान सही अर्थों में मुसलमान समझा जा सकता है।

अच्छे हिन्दू के लिये उपदेशः–

अच्छा हिन्दू भी वही है जो बहमों, भ्रमों से ऊपर उठकर सच्चे परमात्मा की आराधना करे।

हिन्दुओं द्वारा जनेऊ धारण करने की पवित्र रस्म को ध्यान में रखते हुए 'आसा की वार' में सच्चे जनेऊ धारण करने का बड़ा सुन्दर उपदेश मिलता है,जिसमें परमात्मा की उच्चतम हिदायतें हैं। एक अच्छे हिन्दू को गुरुवाणी में बताये हुए जनेऊ को ही धारण करना चाहिए। जनेऊ क़े बीच की खूबियों को सदैव स्मरण रखना चाहिए, जिसके विषय में गुरुवाणी में बड़ी सचेतता के साथ जिक्र किया गया है।

योगियों फकीरों को शिक्षाः–

गुरुवाणी यह समझाती है कि योग की प्राप्ति न तो हाथ में डंडा पकड़ने से या कान छिदवाने से या सिर मुँड़वाने से नहीं होती। अलख जगाकर दर–दर भिक्षा माँगकर भी प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर पहुँचा नहीं जा सकता। ये सब तो दिखावे की बातें हैं। बल्कि इस माया से रहित रहकर प्रभु आराधना में जीवन व्यतीत किया जा सके तब समझा जा सकता है कि अभिलाषी को असली योग का मार्ग मिल गया है। बातों से योग की कमाई नहीं हो सकती। सही योग वही हो सकता है जो सबको बिना वैर–विरोध, भेदभाव के बिना एक जैसा समझे।

ब्राह्मणों को उपदेशः–

भारत में प्रचलित चार वर्णों में से श्रेष्ठ ब्राह्मण को माना गया है जो पाठ पूजा क़रता है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के अनुसार यदि ब्राह्मण के कर्म बुरे हैं तो वह शूद्र से भी बुरा है। जाति–पाति से कोई बात नहीं बनेगी। गुरुवाणी के अनुसार कर्मों ने ही निपटारा करना है कि कौन सा उत्तम है, कौन सा नीच। अगले जहान में भी जाति–पाति किसी ने नहीं पूछनी,बस कर्मों के अच्छे–बुरे होने पर ही निर्णय होना है।

गुरुवाणी के ये समस्त प्रमाण सिद्ध करते हैं कि गुरुवाणी किसी एक धर्म, एक़ सम्प्रदाय के लोगों के लिये नहीं अपितु यह समस्त धर्मों की सीमा

को पारकर समूची मनुष्यता को सच, नेकी, भाईचारा ,भावबराबरी और स्वतन्त्रता के प्रभावों से परिपूर्ण करती है।

संन्यासियों को सन्देशः–

गुरुवाणी यही सन्देश देती है कि मानव को संसार में विचरण करते हुए जीवन निर्वाह करना है, नेक काम करते हुए 'अपने भाव को समाप्त करते हुए' अपने जीवन को गुरुवाणी अनुसार ढ़ालकर उसको निखारना है,नेक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये कर्मशील रहना है और धर्म की बाहरी, दिखावे वाली क्रियाओं में लग कर समय शक्ति नष्ट करना अर्थहीन है। ऐसा मनुष्य प्रभु प्राप्ति के मूल आशय से दूर जाकर भटकता रहता है।

जैनियों को उपदेशः–

जैनी सज्जन बहुत ही सादगी और संयम परिपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले होते है।वे बहुत दयावान होते हैं। गुरुवाणी अनुसार एक अच्छे जैनी को 'दिगम्बर' भी कहा जाता है।

गुरुवाणी किसी कमी को स्वीकारती नहीं,चाहे उसका जीवन किसी भी हिस्से से संबंध क्यों न हो। वह सच का साथ देती है और सच–आचार का जीवन जीने के लिये प्रत्येक को परिपक्व करती है। अच्छे मनुष्य को अच्छा काम करना है ,बांटकर खाना तथा नाम स्मरण करना है और हर बात में उस अकालपुरुख का शुक्रिया अदा करना है।

जीवन मुक्त फलसफे की धारणाः–

गुरुवाणी में जीवन मुक्त का अर्थ अभिलाषी के अपने जीवन काल में ही मुक्त अवस्था ग्रहण कर लेना है और मौत के पश्चात प्राप्त होने वाली मुक्ति उसके लिये अधिक महत्ता नहीं रखती। जिस व्यक्ति के हृदय में परमात्मा का प्यार है, उसका निवास है, वह जीवन मुक्त है।

गुरुवाणी हमें अच्छे जीवन जांच का धारणी बनाती है और गुरुवाणी में बताये अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला अभिलाषी जीवन मुक्त है, उसका संसार में आना सफल है।

मानवीय जीवन का लक्ष्य क्या है ?

यह सवाल प्रत्येक के लिये गम्भीर और विचारणीय है कि इस जीवन का लक्ष्य क्या है ?क्या करें कि यह जीवन व्यर्थ न जाए ?

गुरु जी सरल स्पष्ट शब्दों में समझाते हैं कि मानव को अत्यन्त दुर्लभ मानवीय देह मिली है और इसके द्वारा सृष्टि के सृजनहार को मिलने का अवसर मिला है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में केवल नाम धन इकट्ठा करने के लिये मानव को उत्साहित किया गया है। नाम ही असली दौलत है जिसको साथ जाना है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी हमें अनेक ढ़ंग से सीधा रास्ता दर्शाते हैं। गुरु जी बताते हैं कि अपनी आत्मा को स्वच्छ और सुन्दर बनाने के लिये इस संसार में खलकत की सेवा करना अत्यंत जरुरी है ,जिसके साथ अहं का विनाश होता है।

जीवन कैसे जिया जाए ?

गुरुवाणी के विशेष गुणों का वर्णन करते हुए जो जीवन जीने की शिक्षा मिलती है वह यह है कि परमात्मा के नाम का स्मरण करने उसको सिमरण करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है इसलिये परमात्मा का निरंतर यशोगान करना चाहिए।

गुरुवाणी अनुसार हमें ईमानदरी वाला व्यवहार करके अपनी उपजीविका कमानी चाहिए और सबसे अच्छा व्यवहार रखते हुए हंसते, खेलते, खाते, पीते परमात्मा के आदेश में चलकर मर्यादा में रहकर जीवन गुजारना चाहिए।

परमात्मा की अनन्तता का सत्कारः—

गुरुवाणी अनुसार नेक कार्य, नेक व्यवहार, नेक अमल और अकाल पुरुख की अनन्तता के साथ जुड़ना ही जीवन—सार है। परमात्मा की अनेकता और देन का अन्त नहीं पाया जा सकता इसलिये उसका सत्कार करना और उसकी शरण में जीना ही शोभायमान है इसका अपना ही सुख आनन्द है।

परमात्मा की महत्ता बेमिसाल है और उसकी विशेषतायें भी अनन्त हैं। उनका वर्णन करना हर पक्ष से मुश्किल है, असम्भव है, हाँ उसकी आराधना करना ही उचित है।

तीसरा अध्याय

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के अन्तर्गत ज्ञान मीमांसा

सत्य का स्वरुपः–

सत्य देश काल से परे का ऐसा अपरिवर्तनीय तत्त्व है,जिसकी खोज मानव का चिर लक्ष्य रही है। समूची आध्यात्मिकता, समूचा दर्शन और समूचा ज्ञान–विज्ञान उसी के अनुसंधान में संलग्न है किन्तु कस्तूरी मृग की भाँति सत्य रुपी गंध को अन्तर में छिपाए वह यह अनुसंधान हर देशकाल में पूर्णतः आश्वस्त हो संचार की बाहरी सीमाओं से टकराता रह जाता है। वहाँ सत्य तो विद्यमान है किन्तु उसमें परिवर्तन है। विभिन्न शास्त्रकारों ने इस समस्या को पृथक–पृथक उपायों और प्रमाणों से कुछ अतिप्रसिद्ध मतों की जांचकर देखा है।

शंकर के अद्वैत सिद्धान्त के पोषकों में 'ज्ञान दीपिका' पर भाष्य लिखने वाले पद्म पदाचार्य का मत है कि भारतीय दर्शन का उच्चतम लक्ष्य परम–पुरुषार्थ तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करना एवं जीवात्मा और परमात्मा के बीच तदात्म्य की अनुभूति जगाना ही है। उनके अनुसार जीव का जगत में बँधना कर्मसिद्धांत तथा इससे मुक्ति से लक्ष्योपलब्धि की जानकारी का नाम ही तत्त्वज्ञान है। कर्मसिद्धांत अविद्या का व्यावहारिक प्रकटीकरण है। द्वैतानुभव का एक मात्र कारण अविद्या ही है,इसी से जन्म मरण का चक्र,आत्मा की द्वैत प्रकृति तथा नामरुप के समस्त भेद प्रकट होते हैं और जब तक इसका अथवा

कर्मसिद्धांत का शून्यीकरण नहीं होता, यह सब बना रहता है। सत्य यह है कि जीवात्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं तथापि कर्म के प्रभाव एवं उसकी उत्पादकता के कारण दोनों में निरंतर भेद बना दीख पड़ता है।

कर्मों का नाश ज्ञान से सम्भव है। ज्ञान कर्मों को निष्पक्ष करता है। यह दो प्रकार का है –परोक्ष, अपरोक्ष। परोक्ष ज्ञान का अधिकारी जीव अपने को ब्रह्म से पृथक समझता है जबकि अपरोक्ष ज्ञान लब्ध व्यक्ति दोनों में अभेद को पहचान लेता है। इस अपरोक्ष ज्ञान से संचित एवं संचीयमान(क्रियमाण) कर्मों का नाश हो जाता है,परंतु प्रारब्ध तब भी बने रहते हैं और उनको फल भोग से ही उनसे छुटकारा होता है।

वशिष्ठ का मत है कि यह संसार जिसमें जन्म और कर्म की निरन्तर धारा प्रवाहित है वासना की देन है।यदि वासना का दमन कर लिया जाए तो अन्य दो स्वभावतः नष्ट हो जायेंगे और मनुष्य परम लक्ष्य को पा सकेगा।

पद्म पदाचार्य के कथनानुसार कर्म का अन्त ही वासना का अन्त है। इससे जन्म का चक्र अपने आप छूट जाता है। किन्तु कर्म चक्र के विनाश के लिये भी तो कोई कारण अपेक्षित है; अतः याज्ञवल्क्य सरीखे विद्वान केवल विज्ञान को ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में इन तीनों का विनाशक मानते हैं। इन तीनों को विनाशोपरान्त इससे आत्मोपलब्धि भी सम्भव होती है।

पद्मपदाचार्य का विचार है कि जब तक सूक्ष्म देह को , जो कि वासनाओं का आधार है,नष्ट नहीं किया जाता है,तब तक गुण– दुर्गुण तथा पुण्य पाप का नाश सम्भव नहीं। इनका विनाश वास्तव में कर्मों के अन्त से ही सम्भव है। अतः पद्मपाद का दृढ़ मत है कि जब तक जीव कर्म बन्धन से छुटकारा नहीं पा लेता , तब तक वह लक्ष्य या सत्य को नहीं पा सकता। सत्य की खोज में विशेष प्रकार से सहायक दूसरी प्रणाली न्यायदर्शन की है गौतम का न्याय केवल प्रमाण तर्क आदि के नियम निश्चित करने वाला शास्त्र नहीं है,बल्कि आत्मा इन्द्रिय ,पुनर्जन्म, दुःख अपवर्ग आदि विशिष्ट प्रमेयों का विचार करने वाला दर्शन है । गौतम ने सोलह पदार्थों का विचार किया है और उनके सम्यक् ज्ञान द्वारा सत्य की जानकारी सम्भव मानी है। उत्तरोत्तर 16 पदार्थ या विषय ये हैं– प्रमाण , प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धांत, अपवर्ग, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्ड़ा,हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान।

योग दर्शनः–

यह दर्शन पतंजलि की देन है। उसकी मान्यतानुसार अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश– ये पांच क्लेश हैं– इनसे मुक्त होकर कैवल्य में स्थित होना; एक स्वरुप को पहचानना और मोक्षलब्धि करना है। यहाँ उन क्लेशों से बचना और आत्म–स्वरुप को पहचानना ही सत्य है ।यह क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की स्थितियों को पार करते हुए सम्भव है।

उपर्युक्त तथ्य सब अपराविद्या के सत्य हैं।वहाँ ज्ञाता(आत्मा अथवा जीव) ज्ञातव्य(ब्रह्म) से पृथक रहकर किसी बाह्य सत्य की खोज में संलग्न होता है।सत्य का स्वरुप अद्वितीय है–जब तक सत्य को नहीं पाया, जीव प्रयास दशा में है,द्वैत की स्थिति विद्यमान है ,ज्योंहि सत्य की प्रतीति हुई द्वैत अद्वैत में परिवर्तित हो गया।

उस परब्रह्म के तत्त्व के द्वारा जानने पर हृदय–ग्रन्थि स्वंय खुल जाती है और सब संशय नष्ट हो जाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि 'सत्य' की जानकारी देने वाला यह ब्रह्मज्ञान अंश–अंशी के भेद को मिटाकर ज्ञाता को ही ज्ञातव्य बना देता है। ऐसे ज्ञान का उदय केवल गुरु के ही माध्यम से सम्भव है।

ज्ञान दीपिका' का विशेष कथन गुरु ग्रन्थ साहिब को अक्षरशः मान्य है।न्याय और योग के कतिपय अंश गुरुवाणी में स्वीकृत हैं, किन्तु गुरुवाणी ज्ञान अपरा न होकर पराकोटि का तत्व है।इसलिये उसका लक्ष्य स्वरुप की पहचान अथवा ज्ञान–प्रामाणिकता न होकर ज्ञाता और ज्ञातव्य में अभेद स्थापित करना है। यही परम सत्य का पावन रुप है।

ग्रन्थ में सत्य तत्त्व और उसकी जानकारीः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में सत्, सचु, सचि(अर्थात सत्य का प्रतिपादन) व्यावहारिक , प्रतिभासिक एवं आध्यात्मिक आदि अनेक रुपों में किया गया मिलता है।यह निर्विवाद है कि सत्य देशकाल से इतर अपरिवर्तनीय तथा परमस्थायी सत्ता है।फिर भी क्योंकि ग्रन्थ ग्रन्थमतानुसार यह समूची सृष्टि स्वंय परम् सत्य ब्रह्म ने रची है, उेसी दशा में में सृष्टि को भी सत्य कहा जाना चाहिए। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भी ऐसा माना गया है ,यथा–

आपि सति कीया सभ सति,तिस प्रभते सगली उतपति।(।)

परंतु साथ ही दृश्यमान जगत् का मिथ्यात्व, परिवर्तन, अनस्थिरता आदि भी स्वीकार किए हैं।इनमें से कभी कोई गुण सत्य में नहीं हो सकता है। अतः प्रश्न उठता है कि फिर यह सृष्टि किस प्रकार सत्य हुई ?

इसका उत्तर निम्न पद में है–

"तिस भावै ता करै विसथार, तिस भावै ता एकंकार।"

यह रचना प्रभु की इच्छा का विस्तार है, वह चाहे तो इच्छा त्यागकर समूची सृष्टि को अपने में ही विलीन कर सकता है। ऐसे में मात्र ओंकार शेष रह जाता है, क्योंकि वह परम सत्य है।

ब्रह्म (अकाल–पुरुख):–

कहा जा चुका है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब शुद्ध भारतीय संस्कारों में रचित –संकलित एक ऐसी रचना है, जिसके संकल्प भारतीय चिंतन की परम्पराओं की प्रणाली पर निर्मित हुए हैं। पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर ग्रन्थ में ब्रह्म के अस्तित्व के प्रमाण खोजने और जुटाने की आवश्यकता नहीं पड़ी न कोई ऐसा संशय ही उदित हुआ। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के चिंतन में ब्रह्म प्रत्यक्ष है, स्पष्ट है, अनुभव किया जा सकता है, तो फिर प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण क्या?

यद्यपि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की वाणी ब्रह्म की अवतारवादी ध ारणा को विशेष स्वीकृति नहीं देती, तथापि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ब्रह्म चर्चा के समय अनेकानेक पौराणिक अवतारवादी एवं विशेषणधारी संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है।कुछ इस्लामी नाम भी जो तब तक भारतवर्ष में प्रचलित हो चुके थे, प्रयुक्त हुए हैं ;परंतु अधिक बल पौराणिक नामों पर ही दिया गया है। इसमें यणीकार संतो के सामाजिक–नेतृत्व का आशय तो स्पष्ट है ही साथ ही भारतीय संस्कार शब्दावली से उन महाविदों का मोह भी दृष्टव्य है।ग्रन्थ में मूल सत्य को ओंकार नाम से पुकारा गया है। 1. सतिनाम करता पुरुख, निरभऊ, निरवैर, अकालमूरति, अजूनी, सैभं आदि शब्द ओंकार के गुणों और विशेषणों को दर्शाते हैं।यही सब मिलकर ग्रन्थ चिन्तन में ब्रह्म की संकल्पना का मूल–मन्त्र बन जाता है।

ब्रह्म के लिये ओम अथवा ओंकार शब्द का प्रयोग उपनिषदों में प्रायः मिल जाता है। ओमिति (ब्रह्म ओमब्रह्म है)अथवा सर्वओंकार एवं (सब ओंकार ही है) आदि उक्तियों को देखते हुए यह निश्चित रुप से कहा जा सकता है

कि भारतीय संस्कार शब्दावली में प्रचलित प्रसिद्ध ओंकार संज्ञा ही ग्रन्थ चिन्तन का मूल अंग बनी है। ब्रह्म को एक कहा जाना तो वेदों से ही आरम्भ हो गया था।भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में –य एको अस्ति दंसना महां उग्रो अभिव्रतैः– कहकर ब्रह्म की एकता स्वीकार की गई है।

श्री गुरु नानक देव जी द्वारा मूल मंत्र में ब्रह्म के लिये 'एक' तथा'ओंकार' की जो संज्ञा अपनाई गई है,वह निस्संदेह सांस्कृतिक परंपरा की रिक्थ है।इन दोनों शब्दों का इकट्ठा प्रयोग गुरु साहिब ने सम्भवतः एकेश्वरवाद पर बल देने के लिये किया है।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ब्रह्म के एक भाव संबंधी अनेकानेक पद उपलब्ध हैं, जो निरन्तर भारतीय परम्पराओं को पुष्ट कर रहे प्रतीत होते हैं।

एक में अनेकःनिर्गुण–सगुणः–

यहाँ प्रश्न उठता है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब विचारधारा जहां ब्रह्म को एक मानती है, वहाँ अनेक का रुप भी उसमें पा जाती है।जिस सत्ता को सर्वव्यापक कहा है, वह निश्चय ही स्थान–स्थान पर विभिन्न नाम रुप में विद्यमान होगी, अतः एक से अनेक हो जायेगी।इसी समस्या का उत्तर खोजते दूसरा प्रश्न उठता हैकि वह एक जब देशकाल की सीमाओं में बँधा अनेक अनुभव होगा तब निराकार से साकार या निर्गुण भी से सगुण हो जाएगा।अतः श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में इन दोनों प्रश्नों का उत्तर वेदान्तिक एकता में अनेकता और अनेकता में एकता तथा निर्गुण सगुण की एकरुपता के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

सत्यः–

मूल मन्त्र में ब्रह्म की संकल्पना करते हुए ग्रन्थवाणी उसे 'सत्यनाम'(जिसका नाम सत्य है) अर्थात सत्य स्वरुप स्वीकार करती है जो तत्त्व देशकाल की सीमाओं से ऊपर नित्य अनश्वर स्थायी तथा अपरिवर्तनीय होगा, वही सत्य कहलायेगा।ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है , श्री गुरु ग्रन्थ साहिब चिन्तन की ऐसी मान्यता है 'जपुजी' में उसे 'आदि सचु' जुगादि सचु है भी सचु। नानक होसी भी सचु कहा गया है ।अभिप्राय यह है कि आदि शक्ति परम ब्रह्म ही सत्य है और वही चिर सत्य बना रहेगा।उसका सर्वस्व सत्य है।

प्रभु को एक मात्र सत्य स्वीकार करने की परम्परा शुद्ध भारतीय है।इसमें निसन्देह नहीं है कि कुछ अभारतीय चिन्तन धारायें भी ब्रह्म को केवल सत्य रुप में पहचानती है तथापि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रस्तुत संकल्प का आगमन छान्दोग्योपनिषद् की देन है।

स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि ब्रह्म का नाम ही सत्य है।

करतापुरुखः—

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब विचारधारा ब्रह्म को सृष्टि का रचयिता एवं विश्व के सर्वकारों का स्वामी मानती है।कर्ता, कर्म एवं क्रिया की विविध स्थिति को अनादि सत्ता में क्रेंदित किया है। तीनों देवता ब्रह्मा,विष्णु,महेश प्रकृति के तीनों गुण, दशों अवतार और समूची सृष्टि उसी के हुक्म से निर्मित है।

ब्रह्म को त्रिविध स्थिति का स्वामी एवं सर्वकर्ता स्वीकार करने का संकल्प भी पुरातन भारतीय संस्कारों का ही एक अंग है।

यहां ब्रह्म को 'करतापुरुख' से रचयिता केसंकल्प के साथ–साथ उसमें पौरुष की कल्पना भी सजग हो उठी है।उनकी सीमित दृष्टि गुरुवाणी में प्रभु से जोड़े जाने वाले स्त्रैण संबंधों को तो नहीं ही देख पाई, साथ ही उन्होंने यह भी घोषित कर दिया है कि भारतीय संस्कार साहित्य में ब्रह्म को मात्र पुरुषरुप में देखने वाला चिन्तन सर्वप्रथम श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ही उपलब्ध है ।इस भ्रम का निवारण वेदों के सूक्ष्म मनन से सम्भव है। चारों वेदों में एक प्रसिद्ध श्लोक उपलब्ध है, जिसमें ब्रह्म को 'पुरुष' कहा गया है।

'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।'

निरभउ—निरवैरुः—

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के विचारक रचनादाताओं ने ब्रह्म की अन्य विशेषताओं के नाते उसे निरभउ–निरवैरु कहा है।वह सबका स्वामी है।वही सबका सर्जक, पोषक, एवं विनाशक है अतः उसके लिये भय और शत्रुता दोनों अजानी संवेदनायें हैं ।वह निर्भयता का ही प्रमाण है। सबके भीतर रहने वाला सबका अन्तरात्मा, सबके कर्मों का नियन्ता, सबका साक्षी, किसी से क्योंकर भयातुर हो सकता है ? क्योंकि ब्रह्म निर्भय है उसका निवैर होना स्वप्रमाणित सम्बद्ध विशेषता बन जाता है तथापि वेदों में ब्रह्म को सबका मित्र एव शिव (कल्याणकारी) कहा गया है।

अकाल–मूरतिः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के चिन्तकों ने ब्रह्म की संकल्पना में उसे देशकाल से परे का परमतत्व कहा है।वह अडिग ,दृढ़, अपरिवर्तनशील है,वह शाश्वत सत्य है, सर्वांगीण सुन्दर है वह परिस्थितियों के बंधन से मुक्त है, कण–कण में समाया है,विश्व को समस्त नामरुप उसी के होते हुए भी उसका कोई विशेष नाम रुप नहीं वही'अकाल' है,वही प्रमाण है।

प्रभु के अकाल तत्व का वर्णन उपनिषदों में भी उपलब्ध है। अधिकतर औपनिषदिक चिंतन में प्रभु को तीनों कालों से परे, अविनाशी और संपूर्ण बताया गया है।

प्रभु के अकाल तत्त्व का वर्णन उपनिषदों में भी उपलब्ध है। भूत, भविष्यत्, वर्तमान आदि तीनों कालों का यह संसार ओंकार ही है और तीनों कालों से परे भी जो तत्त्व है,वह भी ओंकार है।

अजूनीः–

ब्रह्म आवागमन अथवा योनि–बंधन के चक्र से रहित है, गुरु साहिब ने इसलिये उसे 'अजूनी' अर्थात् योनि रहित कहा है।वास्तव में ब्रह्म अजन्मा तो उपनिषदों में भी स्वीकार किया गया है और अवतारवाद का कोई विशेष पहलु भारतीय संस्कृति के इन स्रोत ग्रन्थों में उपलब्ध भी नहीं ,तथापि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब चिन्तन में प्रयुक्त 'अजूनी' शब्द का अर्थ मात्र अजन्मा न होकर' जो कभी संसार में जन्म नहीं लेता, ऐसा भी निकलता है यह तो लगभग सभी धर्मशास्त्र मानते हैं कि अजन्मा है–जब कुछ न था, केवल वही था।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब चिन्तन में वाणीकार ने ब्रह्म सम्बंधी स्व–अस्तित्व की सकल्पना को तो स्वीकारा ही है, साथ ही वाद में भी कभी सृष्टि के किसी क्लेश का शमन करने के लिये उसके जन्म लेने की कल्पना श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में की गई है।यह भारतीय संस्कारों के ग्रन्थ चिन्तन की निजी देन है ।ग्रन्थ में ब्रह्म को अजूनी सिद्ध करने वाले अनेक पद विद्यमान हैं।

संभउ(स्वंयमू):–

जो ब्रह्म योनि चक्र में नहीं आता, स्वयंभू होना उसकी सम्बद्ध

विशेषता है। ग्रन्थ में प्रयुक्त 'संभउ' वास्तव में संस्कृत शब्द 'स्वयंभू' का अपभ्रंश रुप हैं परमात्मा को भारतीय संस्कृति में युग–युग से स्वयंभू की संज्ञा से स्मरण किया जाता रहा हैं। यजुर्वेद में प्रभु को कवि परमज्ञाता एवं अपने–आप अस्तित्व में आने वाला कहा गया है–कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभरं।यही सत्य ग्रन्थ साहिब में अनेक स्थानों पर दोहराया गया है–

(1)तुधु आपे आपु उपाइया–20:1,सिरी1,घरु 3, पृष्ठ–73

(2)हरि आपे आपु उपाइदा हरि आपे देवै लेइ।

4:1 वणजारी सिरी 4 पृष्ठ–82

चौथा अध्याय

आस्तिक समस्या

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में ब्रह्म का निर्गुण रुप ही परमतत्त्व के नाते स्वीकार किया गया है।श्री गुरु ग्रन्थ चिनतन में उस परमात्मा को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वनियंता, सर्वज्ञाता, सर्वप्रदाता, सत्यम, शिवम, सुन्दरम् अनेक विशेषणों से स्मरण किया गया है।उसे सगुण–निर्गुण दोनों रुपों में स्वीकार किया गया है।विश्व के सभी आकार गुण तथा समस्त सृजन विनाश का कारण उसी को ठहराया जाता है, तो भी जन साधारण को शान्ति तब तक नहीं होती,जब जक उनका इष्ट उनके प्रति सजग न हो। श्री गुरु ग्रन्थ में इस समस्या का समाधान जहाँ निर्गुण को सगुण दिखाकर एवं उन दोनों में अभेद स्थापित करके किया गया है, वहाँ ब्रह्म को वैयक्तिक–स्तर तक उतारकर मनुष्य रुप में भी कल्पित किया गया है।निश्चय ही इसे गुरुवाणी का लक्ष्य नहीं माना जा सकता।सार यह है कि प्रभु को व्यक्तिगत एवं निर्वैयक्तिक स्वीकार करने वाली दोंनों विचारधारायें ग्रन्थ चिन्तन में समानान्तर चलती हैं।एक में ब्रह्म अव्यक्त ओंकार है, दूसरी में निम्न स्तर पर उतरा व्यक्त ईश्वर जिसकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सृजन, पोषण और विनाश की तीन शक्तियाँ जगत संचालन में क्रियान्वित होती हैं।

ब्रह्म का स्थानः—

समस्त विश्व का रचयिता होने के नाते वह सर्वोच्च है, परंतु वह दर्शक और रसिक भी है, इसलिये सृष्टि के कण–कण में समाया है,सर्वोच्चता उसकी परिपूर्णता की परिचायक है तो कण–कण में समाविष्ट होना उसकी

व्यापकता की।जब विश्व प्रकृति का कोई अस्तित्व न था, तो भी 'अकाल' का शब्द विद्यमान था।संसृति की रचना हुई।खण्ड़ों, लोकों का सृजन हुआ, मोह, माया को जन्म दिया गया।जगत का ताना बाना इसी हुक्म विधान को सौंपकर वह परम अलौकिक शक्ति स्वयं अपनी चमत्कारिक रचना का आनन्द लेने के लिये सबसे ऊँची हो बैठी, एवं वहीं से अपनी कृति के राम विलास तथा शोक संताप बिद्ध अभिनय का रसास्वादन करने लगी। इसलिये ग्रन्थ में समूचे विश्व प्रकार को 'खेल' भी कहा गया है।' जपुजी' में श्री गुरु नानक देव जी ने आध्यात्मिकता की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण पंच-खंड रुप में करते हुए धरम(धर्म), ज्ञान, सरस(श्रम), करम, खण्ड़ों के वर्णनोपरान्त सर्वोन्नत खण्ड सचखण्ड में अकाल पुरुष के निवासित होने का संकेत किया है।

श्री गुरु ग्रन्थ चिन्तन में ब्रह्म की सर्वोपरि विलगता का संकल्प ही प्रस्तुत नहीं किया गया, प्रत्युत दूसरी ओर ब्रह्म की कण-कण में व्यापकता की चर्चा भी की गई है।

जीवः-

श्री गुरु ग्रन्थ चिन्तन में भी इसी प्रकार जीव को ब्रह्म का रुप स्वीकार किया गया है, उसका प्रभु से अभेद बताया गया है और उसमें भी 'सत्य' के उन्हीं गुणों की कल्पना की गई है, जो ब्रह्म में वर्तमान है।केवल अहं और माया के आवरण के कारण जीव अलौकिक गुणों को भूला रहता है। यदि गुरु द्वारा ज्ञान-लाभ कर वह अपनी वास्तविकता को पहचान सके तो वह अपने अंशी ब्रह्म से मिल जाता है।

ग्रन्थ में सांख्य मतानुसार यह भी स्वीकार किया गया है कि प्रकषति(माया) के त्रिगुण बंधनों के कारण जीव में सांसारिक प्रवृत्तियों एवं विषय-विकारों का जन्म होता है।

श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब में यह भी बताया गया है कि जीव इस सांसारिक सत्य को समझने में असमर्थ होने के कारण अविद्या माया या हउमै (अहंकार) हैं, जिससे कि परमसत्ता का अंश दुर्भाग्यवश लिप्त हो चुका है। वह इच्छा, भावना और कर्म का विषय हो गया है, इसलिये प्रत्येक कर्म का फल भुगतने के लिये शरीर बदल-बदल कर उसे पुनः संसार में आना

पड़ता है, अपने अंशी सत्य में वह तभी लीन हो सकता है, जब उस पर ओढ़े हुए आवरण हटा दिए जा सके।

जीव का वास्तविक रुप आनन्दमय है;वह अनश्वर है, शाश्वत एवं अमर है। वह कभी मरता नहीं है वह चिर चेतन है, परंतु शरीर के तत्त्वों के विलग हो जाने पर वह कर्मफल भोगार्थ शरीर बदलता है; जिससे मरने –जन्मने का भ्रम होता है।

यह जीव कर्ता– भोक्ता सुखी दुखी होता है।यहीं इस संसार में रहकर भोग करता है–यहीं जन्म मरण के चक्र में पड़ता प्रतीत होता है पर अपने शुद्ध रुप में जीव या आत्मा अनश्वर है।

आत्मा या जीव परब्रह्म का अंश है, इसलिये वह हुक्मानुसार क्रियाशील रहता है। केवल मोह के कारण ही वह शरीर से प्यार करने लगता है, मोह का आवरण बना रहने का आग्रह करे तो वह अंशी की इच्छा की ओर संकेत करके शान्त हो जाता है।

संसार में जीव की दशाः–

जीव सत्य का अंश है, मात्र हउमै (अहंकार) के कारण वह आवागमन चक्र में बँधा हुआ है।पशुपतिरहंकार विष्टः संसारी जीव कहकर उपनिषदकार ने इस सत्य को प्रतिपादित किया हैं। यहाँ आकर जीव अपने स्रोत को भूलकर भौतिक वस्तुओं में ही खो जाता हैं वह अपने सगे संबंधियों को अपना समझकर उन्हीं से प्यार करने लगता है ।द्वैत के कारण जन्म मरण में पड़ा ब्रह्म से दूर हटता जाता है ।यहाँ तक कि दुष्कर्म या सत्कर्म उसके वश में नहीं रहते ,वह विवश सा होकर यन्त्रचालित की भाँति स्वभाव वश कर्म करता है।

प्रभु से जीव का संबंध और वियोग का अनुभवः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में अंशांशी संबंध के अतिरिक्त जीव और ब्रह्म के संबंधों में पति–पत्नी के अति निकट और प्रेम संबंध की कल्पना की गई है ।वह ब्रह्म ही एक मात्र पुरुष है,शेष उसके अंश जीव स्त्रियाँ हैं ।यथा पत्नी मिथ्या व्यवहार और बाह्य प्रेम से पति को वश में नहीं कर सकती है,वरण विहरणी एवं दोहागनी हो जाती है, तथा वही जीवात्मा उजली हो जाती है, जो पुरुष (ब्रह्म) का प्रेम जीत लेती है।

ठाकुर एकु सबाई नारि।बहुरे वेश करे कूढ़ि आरि।
पर घरि जाति ठाकि रहाईं।महलि बुलाई ठाक न पाई।
सबदि सवारी साचि पियारी।सोई सोहागनि ठाकुर धारी।
(29 ओंअंकार, रामकली, पृष्ठ–933)

पुनर्मिलन प्रक्रियाः–

आत्मा को सुहागन होना है, इसलिये सर्वप्रथम उसे पति को खोजने और पहचानने की आवश्यकता है।प्रभु पति का प्यार प्राप्त करने के लिये उसे अवगुणों का त्याग और गुणों को धारण करना होगा।जब जक वह पीहर(संसार) में रही ,जब जक उसने पति को जानने का प्रयत्न ही नहीं किया,इसलिये अब (ससुराल में) उन अवगुणों की अभिवृद्धि ही एक मात्र ऐसा साधन है, जो प्रियतम को आकष्ट कर सके।इन गुणों की शिक्षा गुरु से उपलब्ध है।'गुरु दुआरै होइ सोझी पाइसी' कहकर गुरु ग्रन्थ साहिब में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है। अब जीवात्मा गुरु के आदेशानुसार प्रभु के प्रति समर्पण कर देती है।उसका नाम जपती और योनि चक्र से छूटकर अपने प्रभु पति को पहचान लेती है। मात्र अपने प्रभु –पति में ध्यानस्थ हो वह मुक्ति लाभ प्राप्त करती है।

पाँचवा अध्याय

माया का स्वरुप

मायाः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के अनुसार माया उस शक्ति का नाम है, जो जीव को ब्रह्म से पृथक् करती है।जीव में अविद्या और अज्ञान का कारण यही है।ग्रन्थ में प्रयुक्त काल और माया दोंनो शब्द एक ही वस्तु के नाम नहीं हैं।काल माया के साम्राज्य में विशेष राज्याधिकारी कहा जा सकता है।अकाल की तुलना में काल तुच्छ और देशकाल की सीमाओं में जन्म–मरण का चक्र है।विश्व में सृजन, पोषण, विनाश की क्रिया ही कालचक्र कहलाती है।इस चक्र को चलाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों माया के पुत्र हैं।

माया का स्वरुपः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में माया को ब्रह्म की नित्य अचेतन शक्ति स्वीकार किया गया है।इसी शक्ति से संसार की वास्तविक और निरंतर रचना हो रही है ।वह परम सत्य की शक्ति होने के नाते ग्रन्थ में मिथ्या नहीं कही गई।उसका एक आर्कषक अस्तित्व है, परंतु वह परिभासिक सत्य है।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में सांख्य प्रकृति की भांति इसे त्रिगुणमयी भी स्वीकार किया गया है।जीव का गर्भागमन तथा शरीर–बंधन श्री मद्भगवत्गीता की तरह माया द्वारा ही माना गया है। ग्रन्थ के वर्णनकारों ने माया को अविद्या, अज्ञान तथा मिथ्यात्व के रुप में भी देखा है।साथ ही प्रसंगवश उस प्रत्येक वस्तु को

माया कह दिया है , जो जीव ब्रह्म मिलन में बाधक है।

ब्रह्म की त्रिगुणात्मक शक्ति:-

वस्तुतः श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का दृष्टिकोण माया को शुद्धाद्वैती ढंग से ब्रह्म की शक्ति स्वीकार करता है।पुष्टिमार्गी मानते हैं कि माया ब्रह्म की शक्ति होने के नाते सत्य है अतः उसकी रचना भी सत्य ही होगी। परन्तु विशेषता यह है कि उनकी दृष्टि से माया दो प्रकार की है—विद्यामाया एवं अविद्यामाया। विद्यामाया जगत की रचना करती है, जो सत्य है परन्तु अविद्यामाया जीव की भेदमयी शक्ति है जो अज्ञानवश संसार की भ्रमात्मक सृष्टि करती है।

जहाँ तक माया के त्रिगुणात्मक होने का प्रश्न है ,श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में माया को श्री भगवद्गीता के समान प्रकृति के तीनों गुणों –सत्व,रज,तम के सम्बन्ध से सृष्टि को आवेष्टित किये हुए दिखाया गया है।जीव इन्हीं गुणों के फंदे में फँसा नाना प्रकार की क्रियायें करता रहता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ऐसे अनेक पद उपलब्ध हैं, जिनमें माया को त्रिगुणमयी कहा गया है।

त्रगुण माइआ ब्रह्म की कीनी कहहु कवन विधि तरीऐ रे।
(21130, आसा 6, पद–104)

समूचा संसार इसके इन्हीं तीन गुणों में बँधा हुआ है।जीव के भीतर परम सत्य का अंश होते हुए भी वह तीन को छोड़ चौथे पद की प्राप्ति में असमर्थ है।अपने अन्तर के ही अमूल्य रत्न को खोज निकालने में असमर्थ रहता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में समूचे संसार को हउमै की उत्पत्ति कहा गया है।यही अविद्यामाया का रूप है,इसी में जीव सत्य से विचलित होकर भ्रम में पड़ता और संसार के हर्ष शोक का भोक्ता बनता है।

माया अज्ञानावरण के रूप में:-

स्वयं सिद्ध सी बात हैकि माया के आवरण के कारण जीव सत्य को विक्षिप्त रूप में देखता है तो वास्तविक सत्य को विस्मरण कर उसी विक्षिप्तता को सत्य समझने लगता है।

श्री गुरु ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है कि जल मंथन से नवनीतोपलब्धि नहीं हो सकती अर्थात् मुक्ति लाभ के लिये माया ही नहीं प्रभु की सेवा अपेक्षित है। ठगिनी माया मोह , लोभ,सांसारिक प्रेम–प्यार,अहंकार आदि के

माध्यम से मनुष्य में अज्ञान का आवरण बनती है। सांसारिक भोग–विलास एवं इद्रिंय रस में लिप्त जीव अविद्या के कारण अपने को सुखी अनुभव करता है । कंचन, कामिनी ,वैभव एवं अधिकार में हो जाता है।परंतु यह तो सब मिथ्या है ,बालू की चमक से किसी को तृप्ति नहीं मिलती ।सच्चे प्रभु का स्मरण त्यागकर अज्ञानी जीव जो भी करेगा ,जहां भी जाएगा उसका परिणाम मिथ्या ही होगा और परिश्रम व्यर्थ ही जाएगा।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में कहा गया है कि –

इकि कूड़ि लागै कूड़ै फल पाए।दूजै भाइ बिरथा जनमु गवाए।
आपि डूबै सगले डोबे कुड़ू, बोलि बिखु खावणिआ।

6:23:24 अष्ट माझ 3, पृष्ठ 123–24 अर्थात जिस प्रकार एक गन्दी मछली समूचे जल को मलिन कर देती है, वैसे ही मोह माया के चक्र में पड़ा जीव समूचे कुल के लिये घातक होता है।

सच तो यह है कि ग्रन्थ मतानुसार जीव का अज्ञान ही सबके बंधनों का आश्रय है यदि उसे गुरु की ज्योति उपलब्ध हो सके एवं वह अज्ञानांधकार से मुक्ति पा ले तो वह माया के जाल को काट सकता है।

मिथ्याडम्बर एवं कर्मकाण्डः–

माया का अविद्या रुप ही आगे चलकर जीव को सत्य से अनासक्त करता एवं मिथ्याडम्बर की ओर प्रवृत्त करता है।प्राणी सत्पुरुष की यर्थाथता को खोजने की अपेक्षा बाहरी कर्मकाण्ड में अधिक रुचि लेने लगता है।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ऐसे आडम्बरों से दूर रहने एवं सत्य की शोध का संदेश दिया गया है।उसे सावधान किया गया हैकि वह मनमुखी भावों को छोड़कर माया के अस्थायित्व को पहचाने ताकि द्वैत से बचकर वह प्रभु में लीन हो जाने में समर्थ हो सके।

माया को सर्पिणी रुप में भी प्रस्तुत किया गया है।यह एक ऐसी नागिन है जो सारे जगत को जकड़े हुए है।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में लिखा है' इह सरपनि के वश जीउड़ा।' जीव माया के वश में पड़ा हुआ है। उसमें इस सर्पिणी को पराजित करने की शक्ति नहीं ,क्योंकि यह अति बलशाली और ब्रह्मा, विष्णु, शिव सरीखे देवताओं को भी छल लेने वाली है।

सरपनि ते ऊपरि नहीं बलीया।जिनि ब्रह्मा बिसनु महादेव छलीया।
आसा कबीर, पृष्ठ–480

ब्रह्म की त्रिगुणात्मक शक्तिः–

वस्तुतः श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का दृष्टिकोण माया को शुद्धाद्वैती ढ़ंग से ब्रह्म की शक्ति स्वीकार करता है।पुष्टमार्गी मानते हैं कि माया ब्रह्म की शक्ति होने के नाते सत्य है।अतः उसकी रचना भी सत्य ही होगी।परंतु विशेषता यह है कि उनकी दृष्टि से माया दो प्रकार की है–विद्यामाया एवं अविद्यामाया।विद्यामाया जगत की रचना करती है, जो सत्य है परंतु अविद्यामाया जीव की मोहमयी शक्ति है जो अज्ञानवश संसार की भ्रमात्मक सृष्टि करती है।

जहाँ तक माया के त्रिगुणात्मक होने का प्रश्न है ,श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में माया को श्री मद्भगवत गीता के समान प्रकृति के तीनों गुणों –सत्व,रज,तम के समन्वय से सृष्टि को अवेष्टित किये हुए दिखाया गया है।जीव इन्हीं गुणों के फंदे में फँसा नाना प्रकार की क्रियायें करता रहता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ऐसे अनेक पद उपलब्ध हैं, जिनमें माया को त्रिगुणमयी कहा गया है।

त्रगुण माइया ब्रह्मु की कीनी कहहु कवन विधि तरीऐ रे।
(2:1:130 आसा 5, पष्ठ–104)

समूचा संसार इसके इन्हीं तीन गुणों में बँधा हुआ है।जीव के भीतर परम सत्य का अंश होते हुए भी वह तीन को छोड़ चौथे पद की प्राप्ति में असमर्थ है।अपने अन्तर के ही अमूल्य रत्न को खोज निकालने में असमर्थ रहता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में समूचे संसार को हउमै की उत्पत्ति कहा गया है।यही अविद्यामाया का रुप है,इसी में जीव सत्य से विचलित होकर भ्रम में पड़ता और संसार के हर्ष शोक का भोक्ता बनता है।

माया अज्ञानावरण के रुप में:–

स्वयं सिद्ध सी बात हैकि माया के आवरण के कारण जीव सत्य को विक्षिप्त रुप में देखता है तो वास्तविक सत्य को विस्मरण कर उसी विक्षिप्तता को सत्य समझने लगता है।

श्री गुरु ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है कि जल मंथन से नवनीतोपलब्धि नहीं हो सकती अर्थात् मुक्ति लाभ के लिये माया ही नहीं प्रभु की सेवा अपेक्षित है। ठगिनी माया मोह , लोभ,सांसारिक प्रेम–प्यार,अहंकार आदि के

माध्यम से मनुष्य में अज्ञान का आवरण बनती है। सांसारिक भोग–विलास एवं इद्रिंय रस में लिप्त जीव अविद्या के कारण अपने को सुखी अनुभव करता है । कंचन, कामिनी ,वैभव एवं अधिकार में हो जाता है।परंतु यह तो सब मिथ्या है ,बालू की चमक से किसी को तृप्ति नहीं मिलती ।सच्चे प्रभु का स्मरण त्यागकर अज्ञानी जीव जो भी करेगा ,जहां भी जाएगा उसका परिणाम मिथ्या ही होगा और परिश्रम व्यर्थ ही जाएगा।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में कहा गया है कि –

इकि कूड़ि लागै कूड़ै फल पाए।दूजै भाइ बिरथा जनमु गवाए।
आपि डूबै सगले डोबे कुडू, बोलि बिखु खावणिआ।

6:23:24 अष्ट माझ 3, पृष्ठ 123–24 अर्थात जिस प्रकार एक गन्दी मछली समूचे जल को मलिन कर देती है, वैसे ही मोह माया के चक्र में पड़ा जीव समूचे कुल के लिये घातक होता है।

सच तो यह है कि ग्रन्थ मतानुसार जीव का अज्ञान ही सबके बंधनों का आश्रय है यदि उसे गुरु की ज्योति उपलब्ध हो सके एवं वह अज्ञानांधकार से मुक्ति पा ले तो वह माया के जाल को काट सकता है।

मिथ्याडम्बर एवं कर्मकाण्डः–

माया का अविद्या रुप ही आगे चलकर जीव को सत्य से अनासक्त करता एवं मिथ्याडम्बर की ओर प्रवृत्त करता है।प्राणी सत्पुरुष की यर्थाथता को खोजने की अपेक्षा बाहरी कर्मकाण्ड में अधिक रुचि लेने लगता है।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ऐसे आडम्बरों से दूर रहने एवं सत्य की शोध का संदेश दिया गया है।उसे सावधान किया गया हैकि वह मनमुखी भावों को छोड़कर माया के अस्थायित्व को पहचाने ताकि द्वैत से बचकर वह प्रभु में लीन हो जाने में समर्थ हो सके।

माया को सर्पिणी रुप में भी प्रस्तुत किया गया है।यह एक ऐसी नागिन है जो सारे जगत को जकड़े हुए है।श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में लिखा है' इह सरपनि के वश जीउड़ा।' जीव माया के वश में पड़ा हुआ है। उसमें इस सर्पिणी को पराजित करने की शक्ति नहीं ,क्योंकि यह अति बलशाली और ब्रह्मा, विष्णु, शिव सरीखे देवताओं को भी छल लेने वाली है।

सरपनि ते ऊपरि नहीं बलीया।जिनि ब्रह्मा बिसनु महादेव छलीया।
आसा कबीर, पृष्ठ–480

माया को ग्रन्थ में रात्रि का सपना भी कहा गया है।कई अन्य स्थानों पर प्रसंगवश इसे भ्रम की दीवार, अज्ञानान्धकार, बीहड़बन अथवा जाल आदि कहकर भी सम्बोधित किया गया है।

माया और मनः–

मानव–मन वृत्तियों एवं संवेदनाओं का पुंज है।हर क्षण इसमें विकार उत्पन्न हो –होकर मनुष्य को कर्म–रत करते रहते हैं।इस प्रकार एक चेतना प्रवाह बनता है।प्रवृत्ति की यह तरंग जो मन के उद्‌गारों एवं अभिव्यक्तियों से उपजती है, संसार में जीव की मायावी पृष्ठभूमि की द्योतक है।गुरु साहिब ने अहंकार रोग में ही उसकी औषधि का होना भी लिखा है, वैसे ही मन की विभिन्न प्रवृत्तियाँ क्रमशः बंधन और मुक्ति का आधार बन सकती है।तभी तो किसी ने कहा था कि मन का स्वामित्व कठोर एवं हानिकारक है,दासत्व सहायक तथा लाभप्रद।

माया से छुटकाराः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब चिन्तन में माया से मुक्ति का एक मात्र रामबाण सद्‌गुरु की प्राप्ति एवं उनके बताये मार्ग पर चलते हुए नाम अथवा शब्द की साधना बताया गया हैः–

न इह मारी ना मरै न इह हठि विकाइ।
गुरु के सबदि परजालीए ता इहु विचहु जाइ।
तनु मनु होवै उजला नामु बसै मनि आइ।
नानक माइआ का मारणु सबुदै है।
गुरुमुखि पाइआ जाइ।

(म॰3, वार बिलावल, पृष्ठ–853)

छठा अध्याय

कर्म सिद्धांत एवं आवागमन

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में मानवीय कर्मों,उनके उत्तम नीच स्तर ,कर्मों के फल एवं फलानुरुप पुनर्जन्म तथा आवागमन के विचार पर पर्याप्त दृष्टिपात किया है।वास्तव में मानव मन की प्रकृति निश्छल रहने की नहीं ,वह स्वभाव वश अनेकों विचारों को जन्म देता एवं शरीर को उनके अनुसार सक्रिय होने की प्रेरणा देता रहता है। अभिप्राय यह है कि मनुष्य चाहे या न चाहे, वह मनोविकारों के रुप में कार्य करने से बच नहीं सकता।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भी शरीर को धरती एवं कर्म को बीज कहा गया है।इस धरती में जैसा बीज बोया जाता है,वैसा ही उसका फल स्वाभाविक होता है।आत्मा उस क्षेत्र की कृषक है।अतः प्रत्येक कर्म का यथायोग्य फल भुगतने के लिये उसे विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है। वही आंवागमन कहलाता है। थोड़े में इस समूचे सिद्धांत को आत्मिक कारण कार्यवाद कहा जा सकता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहब के मतानुसार यह स्पष्ट कर देना भी अन्यथा न होगा कि आत्मा सत् की अंश है ,इसलिये स्वयं कर्मों से प्रभावित हुए भी हउमै के प्रभाव में माया इन तीनों गुणों में बँधी कर्म चक्र में उलझती एवं आवागमन का शिकार होती है।यदि किसी सच्चे गुरु द्वारा उसकी अविद्या दूर हो जाए एवं हउमै के यथार्थ को पहचान लें तो उसके लिये तीनों गुणों का प्रभाव शान्त हो जाएगा और वह बिना फल की कामना के कर्मरत रह सकेगी।वस्तुतः

आत्मा की यही स्थिति भविष्य में आवागमन से बच पाने अथवा मुक्तिलाभ की आशा कर सकती है।

कर्म के प्रकारः–

कर्म को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है।प्रथम तो वे कर्म है, जो फल की इच्छा से किये जाते हैं,इन्हें परिणामी कर्म कहा जाता है।दूसरी प्रकार के कर्म निष्काम अथवा कर्म रहित हैं,जिनके करते हुए जीव अविद्या का आवरण उतार चुका होता है।ये कर्म जीव की मुक्ति का आधार बनते हैं।परिणामी कर्म पुनः दो प्रकार के होते हैं।

1–सामान्य कर्म और विशेष कर्म अथवा कर्मकाण्ड। ये पृथक आडम्बर का परिणाम होते हैं।इसलिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में इनका त्याग करने की प्रेरणा दी गई है। इनमें सामान्य कर्मों के अतिरिक्त वे सब भले बुरे कर्म शामिल हैं जिनके करने से आत्मा को फल भोगार्थ विवश होना पड़ता है।

सामान्य कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का चिंतन इसमें समान विश्वास रखता है।इनमें प्रथम प्रकार के कर्म संचित कर्म कहलाते हैं ।ये ही कर्म आगामी जन्म में प्रारब्ध कर्म के नाम से जाने जाते हैं।संचित फल आगे के लिये एकत्रित होता हैं और जो फल हम वर्तमान में भोगते हैं, वह प्रारब्ध का परिणाम होता है।तीसरे प्रकार के कर्म क्रियमाण कहलाते हैं।ये कर्म वर्तमान में हमारे द्वारा किये जाने वाले होते हैं और भविष्य में जब फल मिलना आरम्भ हो तो उन्हें ही प्रारब्ध कह दिया जाता है।अभिप्राय यह है कि तीनों प्रकार के सामान्य कर्म एक ही चक्र में धूमते तथा फल प्रवर्तन करते है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में ऐसे अनेक पद उपलब्ध हैं, जिनमें शान्तिपूर्वक प्रारब्ध भोगने एवं उत्तम क्रियमाण कर्म करने की प्रेरणा दी गई है।

यथा कर्म तथा फलः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में यह स्वीकार किया गया है कि हमारे प्रत्येक भले –बुरे कर्म का लेखा–जोखा अभिलिखित होता है ।यदि ऐसा न होता तो निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कर्मी को उसके कर्मों के लिये क्या दण्ड या पुरस्कार मिलना चाहिए।अतः स्पष्ट कहा गया है कि हमारे कर्माभिलेख पर मन की स्याही भला–बुरा सब अंकित हो जाता है।वह लेख

कभी मिटता नहीं। प्रत्युत हमारे लिये अनुरुप फल का कारण बन जाता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि यह अभिलेख कौन रखता है एवं भले बुरे का निर्णायक कौन है ? इसके उत्तर में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के बहुधा पद पौराणिक भारतीय परम्परा की ओर संकेत करते हुए दीख पड़ते हैं।उनके अनुसार भले एवं बुरे कर्म क्रमशः पुण्य और पाप कहलाते हैं।

चंगिआईया बुरिआईआ वाचै धर्मु हदुरि
करणी आपौ आपणी के नेड़े के दूरि।
(जपुजी श्लोक, पृष्ठ ८)

अब निर्णायक धर्मराज भले एवं बुरे कर्मों के अनुसार जीव को स्वर्ग अथवा नरक में भेजता है।इससे सिद्ध होता है कि जीव अपने भले–बुरे कर्मों के लिये लोक में पुनर्जन्म पाकर पुरस्कृत अथवा दण्डित होता है।

आवागमनः–

आत्मा के आवागमन में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का दृढ़ विश्वास है कि अविद्या के प्रभाव के अन्तर्गत किये गये मनुष्य के कर्म आत्मा को जन्म–मरण के चक्कर में बाँधते हैं, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का विश्वास है कि स्वयं सत्पुरुषों के कर्मों के अनुसार उसकी योनि निश्चित करता है।यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य योनि से मृत्यु प्राप्त करने वाला जीव पुनः मनुष्य योनि में ही जन्म ले; अपने कर्मों की भलाई अथवा बुराईके अनुसार वह जीव पुनः मनुष्य भी बन सकता है अथवा मनुष्येत्तर योनियों में भी जन्म ले सकता है ।यहाँ यह अवश्य विचारणीय है कि कर्मों की अच्छाई–बुराई परख सकने की योग्यता बुद्धिशील प्राणी में ही सम्भव है। इसलिये मनुष्य योनि को सर्वोच्च और सर्वोत्तम माना गया है। ''कर्मी आवै कपड़ा'' कहकर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी ने यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया है कि जीव कर्मानुसार ही अगले जन्म में शरीर(कपड़ा) प्राप्त करते हैं।यहाँ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी भारतीय संस्कार ग्रन्थों का अनुसरण करता हुआ चौरासी लाख योनियां स्वीकार करता है।साथ ही यह मानता है कि मनुष्य योनि में ही विवेक–बुद्धि द्वारा उत्तम कार्यों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।यदि मनुष्य योनि में भी हउमै को न पहचान पाये।अविद्या के जाल से मुक्ति न हो सके ,तो पुनः न जाने उसे कितनी योनियों में भ्रमण पड़ता है। अतः ग्रन्थ के आवागमन सिद्धांतानुसार प्रत्येक जीव की स्थिति संसार में यह है–

'संजोगी आइआ किरतु कमाइआ करणी कार कराई।'

(1:2, पहरे सिरी 1; पृष्ठ–75)

भाग्यवादी दृष्टिकोणः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रस्तुत कर्म एवं आवागमन सिद्धांत भाग्यवादी दृष्टिकोण अपनाए हुए हैं।मनुष्य अपना भाग्यविधाता स्वयं है', यह धारणा तो ग्रन्थ में पूर्णतः पुष्ट होती है।जब यह सिद्ध किया जा चुका है कि मनुष्य अपने भले बुरे कर्मों के बीज का फल भोगता है तो उसका अपने भाग्य का स्वये निर्माता होना स्वप्रमाणित हो जाता है ।वस्तुतः उसके प्रारब्ध का फल ही भाग्य कहलाता है ।ग्रन्थ के वाणीकारों ने प्रायः कर्मानुसार फलोपलब्धि अथवा भाग्यानुसार प्राप्ति को पयार्यवाची माना है और स्थान–स्थान पर बल देते हुए कथन किया है कि संसार में आकर जीव का मुक्ति मार्ग तभी प्रशस्त हो सकता है जब उसके भाग्य में कुछ उन्नति स्थिति वदी हो ।मुक्ति मार्ग प्राप्त्यर्थ सद्भाव ही गुरुमिलन एवं नाम स्मरण का कारण बनता है।

आवागमन से मुक्तिः–

जीव अविद्या के प्रभाव में ही त्रिगुणात्मक कर्मों के बंधन में बँधा कर्मफल के भोगार्थ आवागमन के चक्र में पड़ता है।अविवेक एवं प्रकृति के संयोग से वह मोहग्रस्त हो जाता है।वासनाओं में फँसकर वह सैकड़ौ योनियों में जाता रहता और भटकता रहता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में एक व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।प्रथम जीव का मनुष्य योनि में आना ही उसके अच्छे प्रारब्ध का द्योतक है।द्वितीय इन्ही अच्छे प्रारब्ध से वह खोज करने पर किसी सच्चे गुरु को पा सकता है ।तृतीय उसे हउमै तत्व की पहचान(ज्ञान) करा देते है।चतुर्थ इस पहचान या ज्ञान से (हउमें त्याग) से अविद्या का आवरण विदीर्णः होता है एवं माया के त्रिगुणात्मक फंदे से जीव मुक्ति पा जाता है ।पंचम गुरु द्वारा वताए नाम स्मरण तथा ज़ीवन क्षेत्र में रहित कर्मों से वह जीवन मुक्ति लाभ करता है ।किसी फलोत्पादक कर्म के न बचे होने के कारण मृत्युपरांत जीव स्वयं सत् में विश्राम करता अर्थात् मोक्ष लाभ करता है ,उसके जन्म मरण का चक्र सदा के लिये छूट जाता है।

मृत्यु एवं मृत्यु उपरांत स्थितिः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की मृत्यु को यथार्थ मानते हैं।प्रत्येक व्यक्ति जो संसार में आता है , उसकी मृत्यु निश्चित है।वास्तव में जन्म और मृत्यु सम्बद्ध शब्द है ।परंतु शरीर के भीतर की आत्मा अमर है ।वह कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होती।आत्मा शरीर से निकल जाए तो वह चेतना विहीन पार्थिव शरीर मात्र रह जाता है ।उसे जला देने से पांचों महाभूत अपने –अपने व्यापक अंशों में मिल जाते हैं।शरीर से पृथक हुई आत्मा ,यदि वह मुक्तात्मा के गुण लाभ नहीं कर चुकी होती, अपने अंशी ब्रह्म में नहीं मिलती ,उसके लिये आवांगमन विद्यमान है।ऐसी आत्मा स्थूल शरीर से अलग होकर एक सूक्ष्म शरीर में रुप में जिसमें अंतः करण के चारों अंग (चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार) उसके साथ रहते हैं ,तब तक किसी ऐसे लोक में भ्रमण करती है,जिसमें उस सरीखे सूक्ष्म शरीर निवास करते हैं ।जबतक कि उसके कर्मानुसार उसके लिये नये शरीर का निर्णय नहीं कर दिया जाता ।वास्तव में किसी ऐसे लोक की कोई प्रत्यक्ष कल्पना श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में उपलब्ध नहीं है। यों ही श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में धर्मराज की चर्चा करते हुए एकाधिक पद प्राप्त होते हैं।पुनर्जन्म के इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हुए हमने उपर्युक्त चर्चा में स्वर्ग–नरक के अस्तित्व को झुठलाया है।

वास्तव में ग्रन्थ मत में मृत्यु तथा पुनर्जन्म का स्वरुप श्री मदभगवत गीता के 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' वाले श्लोकानुसार मात्र शरीर परिवर्तन करना ही है।मरना कुछ भी नहीं , इसलिये मृत्यु आदि होने पर रोने धोने का निषेध ग्रन्थ में मिलता है। मोक्षाधिकारी व्यक्ति जब मरता है तो स्थूल शरीर के साथ–साथ उसका सूक्ष्म शरीर भी नष्ट हो जाता है ।चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार आदि भी अपने अपनें स्रोतों में मिल जाते हैं ।जीव अपने अशी ब्रह्म में मिलकर चिरमुक्ति पाता है।

मन तथा ज्ञानः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब चिन्तनानुसार यह भी कहा जा चुका है कि सफुर ब्रह्म से हउमै की उत्पत्ति हुई तथा अविद्या माया ने अपने तीनों गुणों के कारण सारे विश्व को अहंकार (हउमै) वृत्ति में बाँध दिया।वस्तुतः इन तीन गुणों का पारस्परिक आदान प्रदान ही वृत्ति है तथा इसी को मन की संज्ञा दी जा

सकती है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के मतानुसार यदि विवेक बुद्धि(जिसकी प्राप्ति गुरु से ही सम्भव है) द्वारा मनुष्य तीन गुणों का आदान–प्रदान का सूत्र भंग कर दे और वे तीनों उसके लिये अपने आप में वर्तन करें तो उसका मन नियंत्रित हो गया मान लिया जाता है ।यह कई जन्मों के उत्तम कर्मों का परिणाम भी हो सकता है क्योंकि भौतिक मृत्यु से मन नहीं भरता बल्कि सूक्ष्म रुप में आवागमन के चक्र में पड़ी आत्मा के साथ बना रहता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के अनुसार मन एवं बुद्धि दोनों को (सरमखण्ड) (श्रमखण्ड) में समुज्जवलता प्राप्त होती है ।अर्थात भक्ति साधना ,हउमै की पहचान , अविद्या के अनावरण एवं प्रभुप्रेम तथा नाम जाप से ही मन काबू में आता है इससें मानसिक वृत्तियों पर से हउमै की धूल धुल जाती है तथा मन सिद्धि की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में एक ओर मन को खोटा ,अविश्वस्त, लद्दू गघा, मस्त कुंचर आदि कहकर उसके दुर्गणों की चर्चा की है तथा उस पर उत्तम ज्ञान का बोझ लादकर ही उस पर से अंकुश हटाने का परामर्श दिया है तो दूसरी ओर मन को ज्योति स्वरुप स्वीकार करके वास्तविक सत् को पहचानने की प्रेरणा दी है ।वस्तुतः मन को संयमित कर लेने से सिद्धि प्राप्त हो जाने की भावना श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में पर्याप्त व्यापकता से दृष्टव्य है। इसका स्पष्ट कारण है कि मन के संयमित होते ही विकार के नष्ट हो जाने से माया के तीनों गुण बिछुड़ जाऐंगे ।हउमै का बंधन जीव के लिये खुल जाएगा और मानसिक सक्रियता में फलोत्पादक कर्मों की इति हो जाएगी, परिणाम सिद्ध होगा।

अपनी सामान्य स्थिति में मन, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि में विलीन रहता है ।जब जक उसे संयत नहीं कर लिया जाता ,जब जक जीव मुक्ति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता ।क्योंकि मन रुपी लगाम बुद्धि के हाथ में है ।इसलिये वास्तव में मन को वश में करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है ।यहाँ ज्ञान का अभिप्राय श्री गुरु ग्रन्थानुसार विकार रहित शुद्ध सात्विक वृत्ति से है , जिसे गुरुओं ने विवेक बुद्धि कहकर पुकारा है ।इसी मतानुसार ज्ञान की प्राप्ति किसी सदगुरु से ही हो सकती है, परंतु ज्ञान का वास्तविक रुप केवल गुरु– कथन में ही नहीं ,प्रत्युत हउमै की स्थिति को समझने एवं

नाम के अभ्यास से उपलब्ध होता है ।मात्र गुरु के कथन का श्रवण कर लेने से बड़े-बड़े ग्रन्थ शास्त्र पढ़ लेने तथा सैद्धांतिक योग्यता प्राप्तकर लेने से तो मनुष्य में अहंकार तथा शास्त्रार्थ वृत्ति बढ़ती है, मन संयमित नहीं होता । इसलिये प्रस्तुत दृष्टिकोण ने अभ्यास की आवश्यकता पर बल दिया है।

अन्ततः श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में सच्चे ज्ञानी की पहचान करवाई गई है।ग्रन्थानुसार जो जीव आत्मपहचान रखता एवं गुरु आदेशों पर आचरण करता हो वही सच्चा ज्ञानी है ।चंद्र और सूर्य की भाँति सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु को निर्मल बनाने में समर्थ होता है सार यह है कि वह स्वयं ब्रह्म के ही समान होता है– उसमें भेद–भित्ति का अन्त हो चुका होता है।

सातवाँ अध्याय

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में दर्शन एवं मूल्य

प्रस्तावना: धर्म, पथ और समाज:–

धर्म तथा पंथ शब्दों की व्याख्या हम 'सार तत्त्व' के अध्याय के अन्तर्गत कर चुके हैं।समाज एक ऐसी संस्था है,जिसमें धर्म और पंथ से विमुख पात्रों के समायोजन की भी अपेक्षा रखती है।वास्तव में पंथ और समाज संस्थाऐं हैं किन्तु धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं है,प्रत्युत जीवन का एक ढ़ंग या आचरण संहिता है, जो समाज के किसी ढ़ंग एवं व्यक्ति के रुप में मनुष्य के कर्मों एवं कृत्यों को व्यवस्थापित करता है तथा उसमें क्रमश: विकास लाता हुआ उसे मानवीय अस्तित्व के लक्ष्य तक पहुँचने के योग्य बनाता है।पंथ ईश्वर संबंधी समान धारणाओं के पोषकों का एक ऐसा संगठन होता है, जिसके सभी सदस्य कुछ विशेष चिन्ह भी धारण करते हैं।समाज इन दोनों की पोषक संस्था है ,यहाँ विभिन्न पंथों–मान्यताओं के व्यक्ति जुदा जुदा देशकाल की परिसीमाओं में धर्म को परखते एवं कर्मरत रहते हैं।उनका लक्ष्य कोई पंथ या मत न होकर सामान्य कल्याण भावना होती है।इसी कल्याण भावना को इंगित करने वाले कर्म धर्म होते हैं। जो इस सामाजिक तथ्य की अपेक्षा करते हैं वे कर्तव्यच्युत हो जाते हैं, अपने ही समाज से द्रोह करते एवं सामाजिक नियमों के अन्तर्गत दण्ड के पात्र होते हैं।

विभिन्न गुणों वाले लोग़ों का सहकारी भाव:–

समाज में रहने वाले लोग ,चाहे वे किसी भी गुट या सम्प्रदाय से

संबंधित क्यों न हो प्रायः विभिन्न गुणों के पोषक होते हैं।समाज के सदस्य होने के नाते उनसे भी पारस्परिक सहकार की अपेक्षा रखती है।वे अपने किसी गुण विशेष के समर्थन में नियमों का अतिक्रमण नहीं कर सकते।समाज उन्हें गुण स्वातन्त्र्य पर आघात पहुँचाने का अधिकार कदापि नहीं दिया जाता । ऐसी वृत्ति सामाजिक ऐक्य को भंग कर देती है –अधिकारों की मांग तथा कर्तव्यों की अवहेलना ,सामाजिक व्यवस्था के प्रति धातक हो सकती है । एतदर्थ समाज में विभिन्न प्रकार के गुण युक्त व्यक्तियों का पारस्परिक सहयोग से रहना अत्यन्त आवश्यक है।

समाज में जड़ता के कारणः–

तत्कालीन समाज जड़ता का सर्वप्रथम कारण विवेक शून्यता थी। जन साधारण समाज में रहते हुए भी सामाजिक नियमों ,शास्त्रों तथा परम्पराओं से पूर्णतः अनभिज्ञ थे।उनकी विवेक शून्यता के ही कारण समाज के एक वर्ग ने स्वार्थ साधना आरम्भ कर दी थी और उस वर्गके सदस्यगण अन्य सब वर्गों के लोगों को भ्रमाकर बढ़ते जा रहे थे ।इससे जहाँ एक वर्ग समान स्तर त्याग कर दूसरों पर शासन करके स्वेच्छाचारी होने लगा था, वहाँ अपनी स्वेच्छाचारिता तथा स्वार्थन्धता के कारण वह दूसरों को पीड़ित तथा दमित भी कर रहा था।जन सामान्य सामाजिक नियमावलि से अनभिज्ञ होने के कारण या तो क्षुब्ध होकर विद्रोही बनते तथा वाममार्गी सम्प्रदायों में प्रविष्ट होते थे या अपने एक सहयोगी सम्प्रदाय के अत्याचारों का भाजन बन जाते थे। मुस्लिम समाज के स्वतंत्र अस्तित्व ने अपने यहाँ के कष्टों तथा प्रतिशोध भावना से प्रेरित होकर उन्हें मुसलमान बनाने का लालच भी दिया।हिन्दू समाज की ऐसी स्थिति ही विवेक शून्यता का प्रमाण थी, जोकि समाज के लिये नित्य धातक हो रही थी।

जड़ता का दूसरा विशिष्ट कारण रुढ़िवादिता थी ।भारतीय समाज में विवकेशून्यता ने सदैव परिवर्तनीय मूल्यों में भी रुढ़ स्थापनायें कर दी थी।इससे सामाजिक प्रवाह अवरुद्ध हो गया था छिछलापन उसका स्वाभाविक परिणाम था।उदाहरणतः तीर्थयात्रा पवित्रता का एक रूढ़ भाव बन गया था, किसी स्थान विशेष की धारा में शारीरिक मज्जन मात्र को ही पुण्य मान लिया जाता था,मानसिक प्रक्षालन की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था यथा श्री गुरु नानक देव जी के शब्दों में–

नावण चले तीरथी मनि खोटे तनि चोर।
इकु भाउ लथी नातिआ दुइ भाचड़ी असु होर।
(वार आसा पृष्ठ–789)

इस तथ्य को समझने की अपेक्षा हिन्दू समाज तीर्थयात्रा को जीवन का एक अकाट्य अंग बना कर जी रहा था।यह उसकी जड़ता थी, जो रुढ़िवादिता के कारण पनप रही थी।

दुराग्रह तथा अन्धविश्वास भी इस प्रकार की जड़ता की अभिवृद्धि में पर्याप्त सहायक होते है।अन्धविश्वासों को भी दुराग्रहों को सबल बनाने के लिये ही , हवा दी जाती थी।अनेकानेक दुराग्रह तथा अन्धविश्वास सामाजिक जीवन में घर कर चुके थे ,परिणामतः समाज में निरन्तर जड़ता बढ़ती जा रही थी।

जड़ता का एक अन्य प्रमुख कारण था–मानव कृत्यों में से वास्तविक अन्तर्भाव का लोप ।आँखें बन्द करके ध्यान मग्न होना, एकाग्रचित्तता के लिये एक साधन था। लोग दूसरों पर अपना प्रभाव अंकित करने के लिये बाह्य रुप से ऐसा करते भी थे परंतु भीतर से उनके विषयासक्त विचार प्रवाह को कभी विक्षेप नहीं मिलता था।व्रत–उपन्यास के अन्तर्भावों से पूर्णतः अनभिज्ञ होकर भी लोग विशेष दिनों में भूखा रहकर देवता तुष्टि के काल्पनिक सुख से सुखी होते थे। मनुष्य यन्त्र की भाँति ऐसे असंख्य कर्म करता था जिनकी सत्ता का उसे कोई ज्ञान नहीं था।यह सामाजिक जड़ता थी।निर्गुणी सम्प्रदायों को इस जड़ता से घृणा थी।

सामाजिक कुरीतियाँः–

श्री गुरु संकलन कालीन अथवा उत्तर मध्यकालीन समाज असंख्य क्षेत्रों में अपने पारम्परिक संस्कारों तथा उन्नत दृष्टिकोणों का परित्याग कर भ्रष्ट हो चुका था।लोक नेता वाणीकार इस भ्रष्ट वातावरण में जूझते खीजते समाज का पथ प्रदर्शन करने में संलग्न थे, अतः कतिपय प्रसंगों में उनकी वाणी तत्कालीन भ्रष्टता को सम्भवतः अनजाने में ही साकार करती रही है। भ्रष्टता का चित्रण अनजाने में हुआ ।अन्ततः जहाँ ग्रन्थ में समाज की तत्कालीन कुरीतियों का वर्णन हुआं है ,वहाँ नव–विधान के लिये दिशा–निर्देश भी मिलता है,इसका विश्लेषण–परीक्षण हम आगे प्रसंग क्रमानुसार करेंगे।

सामान्य सामाजिक पतनः—

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में समकालीन सामाजिक परिस्थितियों के जो संकेत मिलते हैं,उनसे समाज के पतन का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। समाज में मनुष्यता का मूल्य लगभग समाप्त हो चुका था।सामाजिक आत्माभिमान लगभग विस्मृत सा हो चुका था। यह पतन निश्चय ही देश में बसने वालों की कायरता एवं गौरवहीनता का परिचायक था।

मूल भारतीय समाज अपने पारम्परिक संस्कारों तथा महान मूल्यों का परित्यागकर सांस्कृतिक स्तर पर भी मुसलमानी संस्कारों के प्रवाह में बहना गौरव की बात समझने लगा था और दासता की आन्तरिक स्वीकृति के कारण उनके जीवनादर्श ही परिवर्तित हो गये थे।ज्ञानी, पंड़ित, मूर्ख, गंवार सब अपना राग अलापते हुए सार और तत्त्व के बिना ही चुनौतियाँ तथा दावे ठहरये जाते थे , मिथ्याभिमान चतुर्दिक आच्छादित था। धर्मी कहलवाने तथा यति होने का दावा करने वाले लोग पथ—भ्रष्ट हुए क्रमशः धर्मत्यागी मोक्ष के इच्छुक तथा योग मुक्ति को विस्मृत किए घर—बार त्याग कर यतीत्व के अधिकारी बन रहे थे।वेद शास्त्रों में से जन—मानस का विश्वास उठ गया था।समाज में उन्नत और नैतिक मूल्यों को भी धन से तोला जाने लगा था एवं पंथक क्षेत्र में पाखण्ड, बहुदेववाद, अन्धविश्वास बढ़ता जा रहा था।यह स्थिति वाणीकारों के लिये चुनौती थी।किन्तु जहाँ मानसिकता पराजित हो गई हो ,वहां आध्यात्मिक आदर्शों का न्यौता ही भ्रष्टता से उबरने का एकमात्र साधन हो सकता है ।सम्भवतः इसलिये उक्त मध्यकालीन लोक—नेता सन्तों ने तत्कालीन पतित समाज के सम्मुख चुनौती के रुप में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर समाज के नव—विधान का सुझाव प्रस्तुत किया गया था। इसी विधान की झलकियाँ प्रायः हमें गुरु ग्रन्थ साहिब में मिल जाती हैं।

लोक—लाजः—

समाज में जन मानस केवल आडम्बर तथा लोकाचार को महत्व देने लगा था। धर्म, मर्यादा तथा तथाकथित आदर्शों का पालन दर्शकों को रिझाने एवं बहकाने के लिये होता था।दुनिया—जहान को प्रसन्न करने के लिये थोड़ा सा आडम्बर रचाकर वे अपनी अन्तरात्मा को छलते थे ,सांसारिक बड़प्पन के लिये मिथ्या कपट तथा अनीति का बाह्यकार रचते थे एवं सत्य के अनावरण

से तिलमिलाकर अपने गौरव का ह्रास हुआ समझने लगते थे। ऐसे में वाणीकारों का सुधारक दृष्टिकोण जनता को इस मिथ्या भूल–भुलैया के प्रति सजग बनाने में ही सार्थक हो सकता है। गुरु अर्जुनदेव जी ने तो आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले जीव को अहम् भावोपरांत दूसरा आक्रमण सीधे लोकाचार पर करने की प्रेरणा दी है।तात्पर्य यह है कि लोक–लाज मनुष्य में दुर्बलता वृद्धि का कारण होती है। वह खुलकर सच्चाई का पक्ष नहीं ले सकता। अतः नव सामाजिक चिन्तन में मिथ्या लोक–लाज को निषिद्ध ठहरा देने में ही वाणीकारों ने कल्याण माना है।

वेश्या अथवा पर–स्त्री गमनः–

प्रस्तुत विधान में पर–स्त्री गमन का सबल निषेध है।इससे समाज में वासना वृत्ति का विकास तो होता ही है , साथ में कटुता, शत्रुता, वर्णसंकरता , सामाजिक अनाचार, व्यभिचारिता आदि को भी बढ़ावा मिलता है, क्योंकि ये सब दुर्गुण सामाजिक निष्ठा, भ्रातृत्व और पारस्परिक एकता के लिये आघातकारी है, इसलिये वाणीकारों ने इनके मूल कारण पर–स्त्री गमन का तीव्र विरोध किया है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के लिपिक भाई गुरुदास की वाणी में पराई स्त्रियों को माँ, बहिन तथा बेटी मानने का उपदेश दिया गया है।पर स्त्री के निकट न जाने वाले मनुष्य को उसने खूब सराहा है।निस्संदेह भाई गुरुदास की वाणी ग्रन्थ का अंश नहीं ,तथापि सम्पादक ने स्वयं इसे ग्रन्थ की कुंजी कहकर पुकारा है।उसने वेश्या से बचे रहने का निर्देश दिया है। भाई गुरुदास जी की वारों में 'वेश्या' शब्द का आना तथावेश्या गमन का निषेध यह सिद्ध करता है कि भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति की परम्परा विद्यमान थी तथा उत्तर मध्यकाल तक सज्जन लोग इसकी बुराईयों के प्रति सजग होते जा रहे थे , इसलिये इस कुप्रथा का निषेध चाहते थे।

नारी आज्ञा पालनः–

वाणीकारों को समकालीन समाज में पुरुषों द्वारा स्त्रियों का अन्धासुख भी स्वीकार न था।वास्तव में स्त्री –पुरुष को समाज की गाड़ी के दो समान चक्र मानते थे ,दोनों की स्थिति मंत्रणा के अभाव में समान थी । ग्रन्थ के विचारक गृहस्थी में स्त्री को मंत्री पद प्रदान करना चाहते थे ,जो पुरुष को परामर्श दे सकती थी, पुरुष उसके परामर्श से ही गृहस्थी चलाता था परंतु

उक्त विचारानुसार मंत्री का परामर्श कभी आदेश नहीं बन सकता था तथापि समाज की कटु यथार्थता इस बात की प्रमाण थी लोग वासना अभिभूत होकर स्त्री की प्रसन्नता में भोगरस के पान की आशा से उसकी मंत्रणा को आदेश मानकर पालते थे ।वासना ने उनका विवेक कुंठित कर दिया था, अच्छा बुरा परख सकने वाली उनकी बुद्धि विकृत हो गई थी,इसलिये वे नारी का अन्धानुसरण करते थे। ग्रन्थ के वाणीकारों को यह मान्य न था ,इसलिये उन्होंने नारी आज्ञा पालन को मनमुखी कहा है तथा इनकी बुद्धिहीनता, खलता एवं पतनोन्मुखता की भरसक भर्त्सना की है–

यथा–

मन सूखा दैसिरि जोरा अमरु है नित देवहि भला।
जोरा दा आखिआ पुरुखकमावदे से अपवित अमोध खल।।

(श्लोक म.4, बार गउड़ी 4, पष्ठ–304)

समाज में पुरोहित वर्ग का प्रसारः–

समाज में वैदिक युग से ही पुरोहित वर्ग का पर्याप्त दबदबा बना था ।समाज में गृहस्थ के द्वारा किया जाने वाला कोई भी शुभ कार्य –हवन, यज्ञ, संतानों के संस्कार आदि बिना पुरोहित को धन दिये सम्पन्न नहीं माना जाता था। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब मान्य सामाजिक विधान में पुरोहित वर्ग की यह धांधली नहीं चल सकती थी ।यहां तो विवाह संस्कार करवाने पर प्राप्त धन–धान्य को भी पुरोहित के लिये अखाद्य ठहरा दिया जा चुका था ।मुसलमानों में काजी–मुल्ला भी हिन्दू पुरोहितों की तरह बीच की आढ़त पर पलते थे ,परंतु क्योंकि सामाजिक विधान में "घालि खाइ किछु हथों देई" का आदर्श अपनाया गया था, तो दान पुण्य करने के लिये पात्र निश्चित करना भी अनिवार्य था।

अतः सिद्ध है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के समकालीन समाज की उपर्युक्त कुरीतियाँ ग्रन्थ के वाणीकारों की सुधारक दृष्टि में चुभती थी, इसलिये उन्होंने नव–विधान रचते हुए न केवल उनका विरोध किया ,प्रत्युत परम्परित संस्कारों पर आश्रित नई दिशायें आलोकित करने का सुप्रयास भी किया ।वर्तमान काल के ऐसे मत–मतान्तर अथवा सामाजिक संगठन, जिन्होंने अपने पथ प्रदर्शनार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के पंथक तथा सामाजिक मूल्यों को अपना लिया है; यद्यपि इनमें कतिपय कुरीतियों को

अभी भी वहन कर रहे हैं तथापि उनमें रुढ़ि–ग्रस्त समाज से स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के मतानुसार काजी–ब्राह्मण का पद बड़ा कठिन है।वास्तविक स्तरोंपलब्धि तभी सम्भव है ,जब काजी गुरुकृपा से जीवित मृत्यु को प्राप्त कर लेता है·ब्राह्मण ब्रह्म का विचार करना सीखता एवं अपने तथा समूचे वंश की मुक्ति का साधन जुटा लेता है। प्रस्तुत स्थितियों में ही उन्हें न्यायाधिकार सौंपा जा सकता है। जब तक काजी और ब्राह्मण स्वयं उपर्युक्त स्तरों के जीवन के सत्य से परिचित नहीं हो जाते, समाज का न्यायाधिकरण उनके दुर्बल हाथों में छोंड़ देना महान उत्तरदायित्व की अवहेलना ही तो होगी। नाम का आंधार लेने वाला आत्म–त्यागी व्यक्ति ही सच्चा काजी हो सकता है। अतः ग्रन्थ का मत है कि नये समाज का न्याय विधान आदर्श, ज्ञानवान, सच्चरित, सहजभावी, जीवनमुक्त महापुरुषों के हाथ होना चाहिये। निःस्वार्थता तथा निष्पक्षता नैयायिकों की प्राथमिक विशेषतायें होनी चाहिये। इसी दृष्टि से ग्रन्थ सम्मत समाज में गुरुमुख अथवा ब्रह्मज्ञानी ही सच्चा न्यायाधिकरण हो सकता है।

सामाजिक पवित्रता–अपवित्रताः जीवन की सार्थकता –निरर्थकताः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में जिस प्रकार सामाजिक विधान को लक्ष्य किया गया है। वह मुख्यतः आध्यात्मवादी तथा आस्तिक दृष्टिकोण के व्यक्तियों का पारस्परिक विनिमय–स्थल कहा जा सकता है। इसकी समूची वस्तुस्थिति सतिनाम् सतिगुरु एवं सतिसंग पर क्रेंदित है, परिश्रम करके कमाना और बाँटकर खाना इसकी विशिष्ट उपलब्धियां हैं, ऐसे सामाजिक विधान में पवित्रता तथा जीवन की सार्थकता उक्त तत्वों को स्वीकार करने एवं समान आचरण करनें में निहित है; अपवित्रता और निरर्थकता इसके विपरीत परिस्थिति का परिणाम है। ग्रन्थारम्भ में ही मोह–माया की मलिनता को दूरकर पवित्र हो सकने का प्रश्न उठाया गया है, जिसके उत्तर में स्वयं गुरु साहिब ने आस्तिक भावना के विकास एवं प्रभु आज्ञा को शिरोधार्य करने की ओर संकेत किया है। तन–मन की निर्मलता सतिगुरु सेवा तथा सत्संगति के माध्यम से सम्भव मानी गई है। तात्पर्य यह है कि समाज के सभी सदस्यों

से न विधान में यह अपेक्षा की जाती है कि वे पवित्र जीवन यापन के लिये आध्यात्म–पथ पर अग्रसर हों और जीवन को उपर्युक्त मुख्य तीन सकारों पर क्रेंदित करें।

ग्रन्थ चिन्तन का शुद्धि संबंधी दृष्टिकोण कदापि यह स्वीकार नहीं करता कि बाह्य मलिनता को दूर कर देने मात्र से निर्मलता का उदय हो सकता है। अन्तर्मन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है।

सामाजिक नीति–अनीतिः–

प्रत्येक समाज के अपने नैतिक मान होते हैं। भारतीय परम्परायें इन मानों के संबंध में अधिक सजग रही है, इसलिये हमारी संस्कृति में नीति पर सविशेष बल दिया गया है। हमारे संस्कार ग्रन्थों में लगभग समस्त स्मृतियां एवं धर्म–सूत्र सामाजिक नीति–अनीति की व्याख्या पर आधारित है। उत्तर मध्यकालीन परिस्थितियों में श्री गुरु ग्रन्थ समस्त सामाजिक विधान में भी नीति–अनीति को विधि एवं निषेध रुप में प्रस्तुत किया गया है। नव विधान को स्वरुप देने वाली अधिकतर नीतियाँ परम्परित सामान्य धर्म है। कतिपय विचारों का खण्डन तथा विरोध परिस्थितियों की अनुकूलता पर आश्रित कहा जा सकता है। अनीतियों का चित्रण सामान्य निषेध रुप में ही हुआ है।

सिद्ध हो चुका है कि ग्रन्थ –सम्मत समाज नैतिक आचरण तथा आध्यात्मिक जीवन दृष्टि पर अतिरिक्त बल देता है इसलिये नैतिक विधि निषेध पर वाणी में अनेक संदर्भ उपलब्ध हो जाते हैं। उन्हीं संदर्भों की सहायता से यहाँ हम नव सामाजिक विधान के प्रत्याशित नीति–अनीति नियमों का विश्लेषण करेंगे।

सत्पथ गमनः–

प्रस्तुत समाज का सर्व–प्रमुख नैतिक तत्त्व सत्पथ आचरण है। सत्य के मार्ग में चलने से ही संसार में प्रशंसा होती है। तथा अपने में अड़सठ तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त होता है। अपने समाज के सदस्यों को उनका स्पष्ट आदेश है कि संसार भर के मोह लाभ त्यागकर सत्कृत्य किया जाए, मन में सत्य को धारण किया जाए तथा वचनों में सत्य की शर्करा का रस घोलकर बात की जाए: अर्थात कर्म, मन, वचन से सत्य पर आचरण किया जाए।

इसमें संदेह नहीं कि सत्याचरण का उपदेश श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की मौलिक धारणा नहीं है। भारतीय संस्कार ग्रन्थों में युग–युग से इसे अभिव्यक्तया महत्व दिया जाता रहा है, तथापि उत्तर मध्यकाल में, जबकि चतुर्दिक अराजकता, अशान्ति और अनास्था का साम्राज्य था ग्रन्थ सम्मत में इसका पुनःस्थापन बहुत बड़े साहस का परिचय देता है।

कर्म–प्रवृत्तिः–

श्री गुरु ग्रन्थ चिन्तन निवृत्ति को निष्कर्मण्यता मानता है। यह सत्य है कि भारतीय संस्कार ग्रन्थों में श्री मद्भगवत गीता में निष्काम कर्म प्रवृत्ति का आदर्श स्थापित किया गया था तथापि धर्मसूत्र काल मे सन्यास और विराक्ति का महत्व अत्यधिक बढ़ गया था। परिणाम स्वरुप लोग पलायन–वृत्ति के होते जा रहे थे।

ऐसे निराश और निष्कर्मण्यतावादी युग में नव सामाजिक विधान ने कर्म–प्रवृत्ति को नियम रुप में स्वीकार किया। दार्शनिक पक्ष में कर्म सिद्धांत में विश्वास रखने के कारण आवागमन का फलोत्पादन करने वाला कर्म–बीज बोने का परामर्श नहीं दिया गया। इस शरीर रुपी धरती में नाम का बीज बोने का आदेश दिया है ताकि अनुरुप फल के पाते यम–त्रास का अन्त एवं मुक्ति–लब्धि सम्भव हो सके। यहाँ भी कर्म प्रवृत्ति का उपदेश आध्यात्मिक ढर्रे पर आश्रित है।

पूर्वजों का आदरः–

यह नियम एक परम्परित सामान्य धर्म है।भारतीय चिन्तनानुसार गृहस्थ प्रवेश द्वारा सन्तानोत्पत्ति व्यक्ति पर पितृ–ऋण से उऋण होने का कर्तव्य मात्र है। यह विचार समाज को निरंतर गतिशील बनाये रखने एवं भावी प्रतिभा को सूर्य का प्रकाश दिखानें में सदैव सहायक हुआ है। ऋण विशेष सें उऋण होने की कल्पना से ही स्पष्ट है कि सन्तान अपने पूर्वजों की ऋणी होती है। अतः अपने आभार कर्ता पूर्वजों का आदर सत्कार करना सन्तान का धर्म हो जाता है। सामाजिक नव निधान में इसी दृष्टि से पूर्वजों के आदर का विधान है और उत्तम सन्तान से पूर्वजों के अपयश का अन्त कर देने की भी आशा की गई है। पुत्र द्वारा पिता का अनादर महापाप माना गया है।

परोपकारः–

ग्रन्थ सम्मत समाज के नैतिक नियमों में परोपकार को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।' मिथिआ तन नहीं परउपकारा' कहकर परोपकार में ही जीवन की सार्थकता का रहस्य खोजने का प्रयास किया गया है। परोपकार को जीवन का बहुत ऊँचा भाव माना है। बच्चे संत–महात्माओं में इस महान गुण का स्वरुप प्रदर्शन करते हुए वाणीकारों ने विश्वास प्रकट किया है कि आवागमन से मुक्त आत्मायें ही वास्तविक जीव होती हैं।

जो सांसारिक पथ–भ्रष्ट को जीवन की प्रेरणा देकर भक्ति में संलग्न करती एवं प्रभु से मिला देती है।

अउगुण सभि मिटाइ कै परउपकारु करेइ (3:4: 172 गउड़ी 5 पृ.– 218):–

यों आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाए तो भी दूसरे का दुश्चिन्तन पाप का मूल एवं अपने लिये मानसिक कष्ट का आधार होता है। अतः ऐसे में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का यह उपदेश 'पर का न राखहु चीत। तुम कउ दुखु नहीं भाई मीत। 'केवल प्रेरणा दायक ही नहीं; वरन सामाजिक विधान में एक विशेष दृष्टि का प्रस्थापक भी है। ज्ञानवान व्यक्तियों से तो प्रत्यक्ष म यह आशा की गई है कि वे परोपकारी होगें।

विदिआ वीचारी तां पर उपकारीः–

(1:25, आसा 1, पृ.–356)

तात्पर्य यह है कि परोपकार वृत्ति को नैतिक नियम रुप में स्वीकार कर लेने से नव सामाजिक विधान का स्वरुप परम्परित संस्कारों के बीच अधिक निखर उठा है, नीति एवं प्रस्तुत विधान परस्पर सुगठित होते दीख पड़ते हैं।

दया करुणाः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर सर्व जीवों को समान तथा एक ही प्रभु का अंश माना है।ऐसे में सैद्धांतिकतः किसी को भी संताप पहुँचाना अपने आप को पीड़ित करने के बराबर है इसलिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में ऐसे स्पष्ट संकेत उपलब्ध हैं जिनमें जीवों को कष्ट न पहुँचाने

तथा निरभिमान होकर हिंसा एवं लोभादि वृत्तियों को त्याग देने पर बल दिया गया है।

नम्रताः—

जीव को मुक्तिपथ पर चलने का सामर्थ्य प्रदान कर प्रभु ने उसे मानव आकार में संसार में भेजा।उसे भरपूर बौद्धिक शक्ति भी दी,जो अन्य प्राणियों को न के समान दी गई थी।संसार में आकर मनुष्य ने अपनी बुद्धि का प्रयोग मुक्तिपथ की शोध में करने की अपेक्षा दूसरों को आतंकित करने एवं अपनी भोग—लिप्सा की तृप्ति में किया।कुछ सफलता मिलने पर उसे अपने पर गर्व हुआ।अभिमान भावना उसी के लिये कष्ट का कारण बनी और मुक्तिपथ को विस्मृत कर सांसारिक विषय वासनाओं में खोकर पथ—भ्रष्ट हो गया इसलिये इस सत्य को पहचानने वाले सभी महापुरुषों ने अभिमान का निषेध कर मनुष्य को विनम्रता का अवलम्ब लेने का आदेश दिया है ।ग्रन्थ के वाणीकार उन्हीं महापुरुषों की परम्परा से थे, अतः उन्होंने अपने सामाजिक विधान में नम्रता को नैतिक नियम रुप में स्वीकार कर लिया।उनका विश्वास था कि नम्र स्वभाव वाला जीव सदैव सुखी जीवन व्यतीत करता है।अभिमानी अहंकार में मारा जाता है। विनयी होकर रहने से मनुष्य यहाँ निर्भीक एवं जीवनमुक्त रहता है।परलोक में भी सुख का अर्जन करता है।पुनः आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाए तो अभिमान अभद्रता तथा नास्तिकता का प्रतीक है।प्रभु से विमुखता प्रस्तुत सामाजिक विधान का दुराचार है इसलिये ग्रन्थ के चिन्तकों ने प्रभु के सम्मुख न झुकने वाले शीश को छेदन—योग्य घोषित कर दिया है।

मिष्ट—भाषणः—

ग्रन्थ के वाणीकारों ने नव—विधान में मिष्ट—भाषण अथवा प्रिय वचनों की महत्ता पुनःस्थापित की है।रुक्ष वचनों से तन मन की रुक्षता तथा शुष्क भाषण करने वाले के लिये जूतों का दण्ड बताया गया है।गुरु अर्जुन देव जी ने तो स्पष्ट धोषणा की है कि "कोमल वाणी सभ को संतोखै।"

धर्म—कर्मः—

प्रस्तुत मत गृहस्थों का मत था।इसमें सर्वाधिक महत्त्व गृहस्थाश्रम को ही दिया गया है। भारतीय धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों की परम्परा गृहस्थ धर्मों पर

सबसे अधिक बल देती रही है।यहाँ गृहस्थ के लिये विभिन्न यज्ञों, कर्मकाण्ड तथा कर्म–कर्तव्यों का विस्तृत विधान किया गया है।यह सत्य है कि प्रस्तुत समाज के नियम रुढ़िबद्ध परम्पराओं को यथा तथ्य रुप में स्वीकार नहीं करते।

गृहस्थ कहलाते हुए इन धर्मों कर्मों से उदासीन नहीं रहा जा सकता –उपेक्षा करने वाले को तो गृहस्थी प्रवेश ही नहीं करना चाहिए।

सेवादानः–

नव–सामाजिक विधान में सेवाभाव तथा अनुकूल पात्र को दान देना नैतिक नियमों में स्वीकार कर लिये गए हैं।सेवा को माना गया है जो सदैव प्रभु के प्रति सजग रहती है।किसी भी जीव को दी जाने वाली निष्काम–वृत्ति का जनक कहा गया है।जिससे प्रभु प्राप्ति सम्भव होती है।दान देने निर्धन के लिये आर्थिक सहायता भी हो सकती है।

उपरिचर्चित नैतिक नियमों का विधान करने के साथ–साथ आचरण शुद्धि के लिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के चिन्तकों ने अनेक अनीतिपूर्ण कृत्यों की ओर भी संकेत किया है , जिनका निषेध सामाजिक –विधान का श्रृंगार हो सकता है।ऐसे कतिपय निषेधात्मक आचरण व्यवहारों का परिचय यहां दे देना हम अनुचित नहीं मानते।

अनैतिक कर्मः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में अनेक मानसिक तथा शारीरिक कृत्यों को अनैतिकता की परिधि में रखा गया है।ऐसे सभी अवांछित कर्मों का वर्णन हमने आगे सविस्तार किया है, यहाँ केवल इतना ही बताना अपेक्षित है कि ये संत–महात्मा पुरातन नीति–चिन्तकों की भाँति स्वर्ग का लोभ तथा नरक का भय तो देते ही थे, साथ ही मनुष्य की सामाजिक मर्यादा पर आघात लगााने की बात भी कहते थे ।

सामान्यतः मनमुखता, अज्ञानता, अविवेक, अहंकार, पंच विकारों ,असत्य आदि को ग्रन्थ मतानुसार अनीति का आधार मना गया है।यदि जीव इनके चंगुल से बचा रह सके , तो उसका जीवन व्यवहार न केवल नैतिक ही होता है, वरन् वह दूसरों के लिये आदर्श बन जाता है।

सामाजिक दुर्गुणः–

सामाजिक दुर्गुणों की चर्चा करते हुए श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में स्वीकार किया गया है कि जो व्यक्ति दुर्गणों को आश्रय देता है, वह सहस्त्रों गुण सम्पन्न तथ्यों की उपेक्षा करके भी एक बुराई को लक्ष्य करता रहेगा।वास्तव में विश्व में भद्रता के संग दुष्टता भी पनपती है, परंतु ईश्वर प्रिय जीव को अपना आंचल ऐसे दुष्ट पात्रों से बचने का भी भरसक प्रयत्न करना चाहिए। दुराचारी जीवों में शैतान निवास करता है,इसलिये उन्हें सुधरने का विचार गध ो को चन्दन का लेप करने के समान है। इस कोटि की दुर्बलताओं को तो प्रायः भला बुरा भी कहा गया है।यथा–

"लबु कुत्ता कुडु चूहड़ा ठगि खाधा मुरुदारु;
पर निंदा परमलु मुखि सुधी अगनि क्रोध चंडालु।"

सामाजिक रक्त–शोषणः–

ग्रन्थ मत में सामाजिक अनैतिकता का वर्णन करते हुए मनुष्य द्वारा मनुष्य का ही रक्त–शोषण सर्वाधिक गर्हित कार्य माना ग्या है।ढ़ोगी रक्त–शोषकों की भर्त्सना करते हुए श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में उनकी मलिनता तथा रक्त–पान के कारण उनकी अपवित्रता का अनावरण किया गया है।स्पष्ट शब्दों में इस बात पर बल दिया गया है कि दूसरे के अधिकारों का अनाधिकृत–भोग मुर्दार भक्षण के समान है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की वाणी में रक्त शोषकों को 'माणस खाणे' कहकर उनकी प्रवृत्ति का कटु विरोध किया गया है।आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर एक ही अंशी के अंश होने से सभी जीव समान हैं ,उन्हें परस्पर गला काटने की छूट नहीं दी जा सकती।

मिथ्याचरणः–

यहाँ मिथ्याचरण से हमारा तात्पर्य मनुष्य की दोरंगी नीति से है।वास्तव में सिद्धांत और व्यवहार का अंतर ही दोरंगी है, जिसे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में अनैतिक माना गया है।ग्रन्थ संकलन काल की सामाजिक परिस्थितियाँ इस बात की साक्षी हैं कि पण्डित जन दूसरों को शास्त्रानुकूल व्यवहार का आदेश देते थे और स्वयं ,उसके विरुद्ध आचरण करते थे।उनके उपदेश जन–जीवन के लिये मिथ्या थे, क्योंकि उनकी कथनी और करनी में अवांछित भेद था।

अतः श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में एकाधिक संदर्भों में अने दुष्कर्मों पर आवरण ड़ालकर संसार की आँखों में उच्चाशय बने रहने वालों की भर्त्सना करते हुए यह स्थापित किया है कि प्रभु तो जल–थल में व्यापक है ,बाहरी उजलापन उसे नहीं छल सकता। अनेक पदो के लिये छिपाये विकार भी संसार पर प्रकट हो ही जाते हैं।इसलिये मनुष्य के लिये उत्तम नीति सरलता या सहजता की है।उसे भीतर बाहर एक रुप जीवन बिताना ही श्रेयस्कर है।इसके विपरीत कृत्य अनैतिक हैं।

गुरु विमुखताः–

सन्तमत में गुरु विहीन स्थिति को भी अनैतिक माना गया है।संसार में रहने वाले प्रत्येक जीव के लिये मोक्ष साधना का आयोजन मात्र सद्गुरु की कृपा से ही सम्भव होता है; अतः गुरु से विमुख रहना अथवा गुरु सम्मत पथ के विरुद्ध आचरण करना अधमता का द्योतक है।

मिथ्यावाद–

श्री गुरु ग्रन्थ संकलन काल की परिस्थितियों में हिन्दू जाति के आडम्बरों का निर्देश करते हुए कई संदर्भ प्रस्तुत किए गए हैं।माथे पर लम्बा तिलक और उजली धरती व्यक्ति के सौहार्द के तब तक परिचायक नहीं होते जब तक कि वह मन से कसाई प्रवृत्ति को न निकाल दे ।मुसलमानों का विरोध करने वाले पण्डित भी जब नील वस्त्र पहनने में गौरव अनुभव करते हैं, मुसलमानों के अन्न से अपने यज्ञादि सम्पन्न करते तथा हलाल किया बकरा खाते हैं और फिर भी अपने रसोई घर में मुसलमानों को फटकने नहीं देते , तो इसे मिथ्याडम्बर ही कहा जा सकता है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में भी कहा गया है कि मिथ्या के पोषक जीव प्रायः सत्य को स्वीकारते ही नहीं।अज्ञानाधंकार में जीने के कारण वे जान ही नहीं पाते कि सत्य का अवलम्ब लेने मात्र से ही मिथ्या का अन्त हो सकता है।उनकी दशा अपनी मिथ्या बुद्धि के कारण 'समझदार कौए के मल–भक्षण' की कहावत को चरितार्थ करती है।इसलिये ग्रन्थ सम्मत दृष्टिकोण स्पष्टता और सत्यानुकरण की कामना करता है तथा इसके विपरीत आडम्बर एवं मिथ्याचार को अनीति मानता है।

पर–स्त्री सम्बन्धः–

गुरुमत पर स्त्री भोग को सामाजिक अपराध मानता है। समाज के

सन्तुलन को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि विवाह संस्था के नियमों का कठोरता से पालन किया जाए श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में गुरु विमुख अथवा मनसुख को ऐसी ही कुलक्षणी नारी के रुप में प्रस्तुत किया गया है, जो पर पुरुष की तृष्णा में भटकती और सदैव अतृप्त बनी रहती है।यह अतृप्ति अनीति की जनक है। यथा–

मनमुख मैली कामणी कुलखणि कुनारि।
पिउ छोड़िया धरि आपणा पर पुरुखै नारि पिआरु।
त्रिसना कदे न चुकईजलदी करे पुकार।

श्लोक म॰3, वार सिरी 3 पृ॰–89

पर स्त्री गमन करने वाले पुरुषों के कुकृत्य भी अनैतिक कहे गये हैं। ध्यान योग्य बात यह है कि जनमानस को सुमार्ग पर लगाने तथा कुकृत्यों से बचाये रखने के लिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के सामाजिक नव विधान में दण्ड तथा उपेक्षा के भाव उसी प्रकार दिखाये गये हैं, जिस प्रकार भारतीय परम्परा में नरक, यमदूत अथवा नीच योनि में जन्म का पूर्व अस्तित्व है।

जूठनः–

जूठन से हमारा अभिप्राय उस मलिनता से है, जो मनुष्य के मनोविकारों कुविचारों तथा अनीति संगत कृत्यों से उत्पन्न होती है।यह मलिनता श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में अनैतिक कही गई है। यदि मन मलिन हो तो शरीर भी मलिन ही कहा जाएगा, फिर उसमें जिह्वा और उच्चरित सब वचन मलिन तथा जूठन माने जाऐंगे।मन में निर्मल नीति के उदय होते ही सर्वस्व स्वछंद हो जाता है और अनीति का अन्त होता है।

पर–निन्दाः–

गुरुमत–विधान में पर निन्दा तथा निन्दक को बड़ी घृणित दृष्टि से देखा गया है।ऐसे निकृष्ट दुर्गुणों को अनीति की पराकाष्ठा माना है।निन्दा मनमुखी कर्म है, अतः किसी भी दशा में छूट नहीं दी जा सकती है। ऐसे व्यक्ति को कहीं आश्रय नही मिलता। वे घर–बाहर सब जगह तिरस्कृत होते है क्योंकि वे प्रायः गुरु विमुख होते हैं, इसलिये वे संसार में अनाचार का कारण बनते हैं।

ईश्वर को पाने के लिये भी लोग अनेक स्वांग भरते हैं– कोई षटरस भोजन का त्यागकर कपड़ों के स्थान पर मृगचर्म लपेटता है, कोई चर्म, खप्पर, दण्ड, शिखा, सूत्र, धोती आदि धारणकर सन्यासी बन जाता है।वे सब प्रभु पथ पर विभिन्न स्वांग भरने वाले सम्प्रदाय हैं। उनके आडम्बर भी अपने में सत्यच्युति को आवृत्त करने के कारण वर्जित है। गुरुमत ने यह निषिद्ध ठहराया है अभिप्राय यह है कि संसार में सुखी रहने तथा भविष्य में प्रभुप्राप्ति के नीतिकार मार्ग बाह्याडम्बरों के त्याग एवं सत्यान्वेषण के राजपथ की महत्वपूर्ण शाखायें हैं।

पराया 'हक' मारना तथा 'अमानत' न लौटाना:–

गुरुवाणी उक्त दोनों अभिवषत्तियों को अनैतिक ठहराती है। पराया हक मारना हिन्दू के लिये गौमांस खाने तथा मुसलमान के लिये सुअर खाने के समान है।तात्पर्य यह है कि पराधिकार पर अपनत्व जमाना अतिशय खेदजनक कृत्य है।मनुष्य प्रायः दूसरे की वस्तु हड़पते हुए यह समझता है कि उसे कोई नहीं देख रहा।यह भूल जाता है कि ईश्वर सर्वव्यापक है और उसके भीतर से ही उसकी प्रवृत्ति की जांच कर रहा है।

खुसि खुसि लैंदा वसतु पराई।
देखै सुणै तेरै नालि खुदाई।

(4:2:20, मारु 5, पृष्ठ० 1020)

अमानत में बेईमानी करने से मानसिक क्षुब्धता बढ़ जाती है, संतुलन बिगड़ जाता है, शान्ति अस्थिरता में परिवर्तित हो जाती है। इसलिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में निन्दक की अति भर्त्सना की गई है। उसके मतानुसार पर–निन्दक चीखता चिल्लाता है,परंतु उस पर प्रभु की कृपा कदापि नहीं होती, बल्कि निंदक के संगी–साथी भी उसी के साथ डूब मरते हैं।

पिषनु–वचन(चुगली):–

निन्दा की भाँति ईर्ष्यावश दूसरा का बनता कार्य बिगाड़ने के लिये झूठी बातें बनानी चुगली कहलाता है। चुगल निन्दक भूखे रुल मुएं कहकर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में न केवल दोनों की भर्त्सना की गई है, प्रत्युत दोनों के जीवन की अनस्थिरता का भी निर्देश किया है।ग्रन्थ में अपने अनुयायियों

को सावधान करते हुए आदेश दिया है कि जो व्यक्ति दूसरे से ईर्ष्या करता है, उसका कभी भला नहीं होता ।सज्जनों को कभी उसकी बात सहानुभूति से नहीं सुननी चाहिए। चुगली करने वाला तो चुगल कहलाता ही है , उसके समस्त पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं।

आडम्बरः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी ने समस्त समाज में बाह्य आडम्बरों को भी अनीतिकर माना है।ग्रन्थ संकलन काल प्रायः आडम्बर तथा मिथ्याचार का युग था।गुरुमत के अनुसार नहा धोकर, चन्दन का तिलक लगाकर, लेप करना तथा सफेद कपड़े पहनकर ज़ीव का भद्र सामाजिक दीख पड़ना आडम्बर ही है।

अमानत को उसके स्वामी को सौंप देना ही नीति है, उसी में सुख लब्धि होतीं है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में भी कहा है–

पराई अमाण किउ रखीऐ दिती ही सुख होइ।

(श्लोक म॰3 वार सारंगी 3, पृष्ठ॰–1249)

तृष्णाः–

और की इच्छा तृष्णा कहलाती है।संसार में मनुष्य मोहवश अपने आप में प्रायः संतुष्ट नहीं होता।उसे और अधिक पाने की तृष्णा बनी रहती है। इसी से पराभूत होकर वह अनेक अभिचारी, पाप–पुण्य तथा अनैतिक कृत्य करने लगता है।इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए ग्रन्थ के वाणीकारों ने मूल पर ही आघात पहुँचाया है। तृष्णा को ही अनैतिक ठहरा दिया गया है।ग्रन्थ–मतानुसार मनुष्य के लिये ग्राह्य नीति संतोष है, तृष्णा की अनैतिकता इसी से समाप्त की जा सकती है।अन्यथा हजार कमाने वाला लाख के पीछे मुहँ खोले भाग रहा है, अनेक भोग विलासों को पाकर भी उसे तृप्ति नहीं होती।माया चक्र में 'और अधिक' मांग कर रहा है।इसी मांग को पूर्ण करने की उत्कट इच्छा उसे पापाचार की ओर प्रवृत्त करती है। अतः गुरुवाणी में इसका निषेध मिलता है।

अभिमानः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब 'जी में अभिमान अनैतिक–मूल्य है, इसके विपरीत विनम्रता नैतिक गुण माना है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की प्रमुख वाणी 'सुखमनी साहिब जी' में लेखक ने विभिन्न प्रकार के अभिमानों की

भर्त्सना है; उसी में सुख तथा मुक्ति की अपेक्षा रखी गई है।विनम्र ही सबसे ऊँचा है, ऐसा आदर्श स्थापित किया है ।इतना ही नहीं अपने को अभिमानवश अपने को ऊँचा दूसरों को नीचा जानने वाले व्यक्तियों के नरक में पड़ने की चर्चा भी हुई है।इसलिये प्रत्यक्ष है श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के सामाजिक विधान में अस्वीकृत है; अस्तु अनीति है।

पाप तथा उसका फलः—

श्री गुरु ग्रन्थ सम्मत समाज में भी पाप अनैतिक है, इसीलिये विवकेशील प्राणी से पाप का त्यागकर आत्मज्ञान की आशा की गई है।वाणीकारों का विश्वास है कि पाप को त्याग कर देने वाले जीव को शोक, वियोग अथवा उत्पीड़न के शेष नहीं रहा जाता।

पुनः गुरुवाणी पाप के फल से भी जीवों को सावधान करती है।दुष्कर्मियों को कोल्हू में पीड़ने का दण्ड दिया जाता है, ऐसी कल्पना है।यथा—

'चोर जार जुआर पीड़े घाणीऐं।'

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के नव—विधान में कई ऐसी सामान्य वस्तु—स्थितियों का निर्देश उपलब्ध है जो अनैतिक नियम न बन सकने पर भी विवेक बुद्धि के अभाव में निषिद्ध ठहरती है।कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

सुशिक्षित होना बड़ा उत्तम गुण है।पढ़—लिखकर व्यक्ति विद्वान बनता तथा समाज में प्रतिष्ठित होता है।किन्तु ग्रन्थ मतानुसार यदि सुशिक्षित होकर भी उसमें लोभ, मोह, तथा अभिमान की भावना बनी रहे , तो विद्वान होकर भी मूर्ख कहलाएगा।

सुअवसर को व्यर्थ गंवाना भी गुरुमत में अनैतिक आचरण है।शरीर में युवा रक्त होते प्रभु—नाम स्मरण की अपेक्षा करना तथा बुढ़ापे में 'अंग गलित, पालितं मुण्डम' के साथ नाम स्मरण में यों ही असमर्थ हो आना ; ग्रन्थ चिन्तन में इसे अवसर च्युति माना है तथा इसलिये अनीति कहा गया है।

अतः सदैव सावधान रहने तथा अवसर से लाभ उठाने में तत्परता दिखाने की योग्यता आध्यात्मिक पंथ के पथिक के लिये भी आंवश्यक है। यही परिस्थिति अनुकूल नीति है।

आदर्श सामाजिकः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में प्रस्तुत सामाजिक विधान में जिन आदर्श मूल्यों का निर्देश मिला है, यदि कोई भाग्यशाली जीव उन आदर्शों को अपने जीवन में घटा ले नीति तथा सत्पथ गमन करते हुए यदि यह निर्दिष्ट पावन गुणों को अंगीकार कर ले तो वह नव विधान का आदर्श सामाजिक कहला सकेगा।ऐसे आदर्श जीव को गुरुवाणी में विभिन्न संज्ञायें प्रदान की गई हैं।सब की सब संज्ञायें जीव के बहुविधि गुणों पर आश्रित है–यथा भक्त(जो भक्ति गुण से सम्पन्न हो),दास(समर्पण भावना), सेवक(सेवा ज्योतिर्मान),मुक्त(आवागमन से मुक्त), अथवा जीवन्मुक्त(जीवन में ही मुक्ति प्राप्त करने वाला), योगी(आत्मोपलब्ध), साधु(ऐंद्रिय नियन्त्रण),सचियार(सत्य का पोषक),नर(वास्तविक मानवीय गुणों को धारण करने वाला), सिक्ख (गुरु का चेयाता जीव)। इनमें से गुरुमुख तथा ब्रह्मज्ञानी प्रमुख संज्ञायें कही जा सकती हैं।श्री गुरु ग्रन्थ आदर्श पुरुष के सामाजिक मूल्य तथा उनमें सम्बद्ध सद्‌गुणों की एक सूची डॉ॰ तारन सिंह ने अपने एक शोध पत्र में इस प्रकार प्रस्तुत की है–

	सामाजिक मूल्य	सद्‌गुण
1.	सचियार(सत्यता)	दया
2.	ज्ञान	सन्तोष
3.	धर्म	अहंत्याग
4.	विवेक	सेवा
5.	सतीत्व	निर्मोह
6.	सहज	शरण
7.	त्याग	नम्रता
8.	मिलाप	विश्वास
9.	सुबुद्धि	पावनता
10.	एकाग्रचित्तता	प्रेम

गुरुमुख में ,सहजावस्था के सभी गुण स्पष्ट हैं।उसके लिये सुख–दुख,हर्ष–शोक समान कहे गये हैं। वह अहंकार का अन्त करके 'सहज' को प्राप्त करता है ।अन्य सद्‌गुणों की चर्चा करते हुए वाणीकारों ने निरभिमानता,

निर्मलता, धर्माचारण, नाम–गान, जाति–पाँति से उदासीनता एवं त्याग को गुरुमुख में स्थापित किया है।गुरुमुख के जीवन के व्यवहार पक्ष अथवा रहन–सहन में निर्मलता, पूजा, प्रेम, माया रहितता, एकाग्र मानसिकता, आत्मज्ञान, प्रभु प्रशस्ति गान, भाव, अन्तर्विवेक आदि की चर्चा हुई है।

'गुरुमुखि निरमल रहहि पिआरे।जिउजल अंभ ऊपरि कमल निरारे।'

(2:15 आसा 2, पृ–353)

गुरुमुख को अतीव समर्थ एवं आध्यात्मिक शक्तियों से मण्डित भी स्वीकार किया गया है। उसमें ईश्वर की ज्योति प्रदीप्त रहती है, इसलिये उसमें करोड़ों जीवों का उद्धार तथा जीवन दाता हो सकता है। वह अनैतिक विकृत्तियों का संहारक भी कहा गया है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के संकलनकर्ता श्री अर्जुन देव जी ने नव–सामाजिक विधान के आदर्श पुरुष को ज्ञानी अथवा ब्रह्मज्ञानी की संज्ञा प्रदान की है।अपनी प्रसिद्ध वाणी 'सुखमनि' में उन्होंने ब्रह्मज्ञानी के लक्षणों की सविस्तार चर्चा की है।मन, वचन, कर्म से निर्लेपता, निर्दोषता, सम–दृष्टि, धैर्य, सहजता, निर्मलता, ज्योतिर्मत्ता, निरभिमानता, विनयशीलता आदि महान सामाजिक मूल्यों की गणना की है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के विधान का आदर्श सामाजिक समस्त नैतिक , आध्यात्मिक तथा बौद्धिक विशेषताओं का संपोषक होता है।पुरातन भारतीय संस्कार परम्परा में सामाजिक श्रेष्ठता का द्योतक शब्द 'आर्य' इसी संदर्भ में प्रयोग होता था। बौद्ध विचारकों ने उसे 'बुद्ध' एवं जैन विचारकों ने उसे 'जिन' कहा है।दशमगुरु द्वारा प्रयुक्त 'खालसा' शब्द में भी ये ही विशेषतायें समाहित हैं।ग्रन्थ के वाणीकारों ने उसे संत ,गुरुमुख ब्रह्मज्ञानी, आदि संकल्पनायें प्रदान कीं।वास्तव में सबका लक्ष्य एक ऐसा जीवन था, जो प्रत्येक क्षेत्र में 'सत्य' को व्यवहार में ढाल सकने में समर्थ हो।

मानववादी दृष्टिकोणः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है इसलिये इसमें प्रयुक्त नव सामाजिक विधान में स्वीकृत मानवीय दृष्टिकोण निश्चय ही भारतीय संस्कृति का अनुसरण कर रहा है।इसका सर्वप्रथम सिद्धांत है–सब जीव प्रभु के बनाये हैं;इसलिये समान हैंउनमें कोई ऊँच–नीच, बुरा–भला,अथवा ग्राह्य–त्याज्य नहीं हो सकता।यदि है भी तो भले–बुरे एक

ईश्वर के बनाये है।इसलिये उनमें से किसी की उपेक्षा नहीं की जा सकती।भारतीय मानववादी चिन्तन सब जीवों में प्रभु का समान अंश देखता है।चतुर्दिक उसी की माया का प्रसार तथा प्रभाव देखकर मनुष्य मात्र की एक सूत्रता की धारणा पुष्ट करता है।

दूसरा सिद्धांत जाति–पाँति का विरोध हैः–

भेद–भाव दृष्टि तो धीरे–धीरे सामाजिक वातावरण के विषाक्त होने तथा ब्राह्मण वर्ग द्वारा शक्ति संचार का लेने से उदित हुई है।उत्तर मध्यकाल में गुरु ग्रन्थ संकलन सरीखे आन्दोलन ऐसे ही सामाजिक पतन के विरोधार्थ अस्तित्व में आए और समाज का संशोधन कर भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुनःस्थापना में सफल हुए। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में आए मानववादी चिन्तन में इसीलिये जाति भेद का विरोध किया गया है।पीछे पंथक मूल्यों की चर्चा में इस तथ्य की सविस्तार चर्चा हुई है। यहाँ बानगी के तौर पर कबीर द्वारा ब्राह्मण और जुलाहे के भेद को ललकारना तथा हरिनाम की सहायता से सबकी साम्यता का दम भरना प्रस्तुत मानववाद के दूसरे सिद्धांत की पुष्टि करता है।

तीसरा सिद्धांत है–'ऐक्य में विश्वास'ः–

यहाँ ईश्वर के एकत्व में ईश्वरांशों 'जीवों' का बहुत्व अथवा बाहुत्व में एकत्व का एकेश्वर में दृढ़ विश्वास लाने से ही सम्भव हो पाता है।इसलिये वाणीकारों ने ईश्वर के बहुत्व को सर्वस्व समर्पित करके उसके एकत्व में विश्वास स्थापित किया है।भारतीय मानववाद को इससे पर्याप्त बल मिलता है।यही धारणा मित्र–शत्रु का अन्त करके विश्व मैत्री की नींव रखती है।

चौथा तथा अन्तिम सिद्धांत है जन–सेवाः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का मानववादी दृष्टिकोण भेदभाव विहीन लोक सेवा का आह्वान करता है।'जन की सेवा उत्तम कामा'कहकर मानव–समानता तथा उनकी सेवा में साम्य भावना की माँग की गई है।निष्कर्ष यह है कि,श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी समस्त समाज का मूल पारस्परिक स्नेह, सहयोग तथा संगठन में है; इसलिये इसे भारतीय मानववाद का पुनःपरिचायक कहा जा सकता है।

निष्कर्षः–

हमने श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी को आधार बनाकर ,जिस सामाजिक विधान की कल्पना उसमें की है, उसी के कतिपय मूल्यों की व्याख्या प्रस्तुत की है।इनमें से कुछ मूल्य तो भारतीय संस्कार परम्पराओं का ही सतत् प्रवाह हैं,जबकि कुछ ऐसे भी हैं जिनमें श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के वाणीकारों का दृष्टिकोण का रुढ़िगत परम्पराओं से विद्रोह कर बैठा है।हमारा विश्वास है कि इस प्रकार के विद्रोह के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं प्रथम ग्रन्थाधारित सामाजिक विधान की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि तथा द्वितीय सत्वर बदलती हुईराजनीतिक, सामाजिक पंथक परिस्थितियाँ इन्हीं दोनों धाराओं से समन्वित सांचे में ढ़लकर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के सामाजिक मूल्यों का निर्माण हुआ है इसलिये वे केवल परम्परावादी न रहकर नवचेतना के द्योतक बन गये हैं और ग्रन्थ के निजी सामाजिक विधान की रुपरेखा भी सम्पुष्ट करते कहे जा सकते है।परंतु ध्यान रहे कि इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं होता कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब भारतीय चेतना की परिधि से इतर किसी भिन्न समाज अथवा संस्कृति का अंग है या माना जान चाहिए श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का सामाजिक ढ़ाचा भारतीयता का अविछिन्न आवरण से आवेष्टित है।इसलिये उसे विशुद्ध भारतीय साहित्य, साधना तथा चिन्तन की मंजूषा कहा जा सकता है।

आठवाँ अध्याय

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब–विद्वानों की दृष्टि में

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी को सर्वव्यापी 'जगत ज्योत' मानना और सत्कारना समूची मानवता के कल्याण में होगा। इस महान ग्रन्थ का अध्ययन करने के उपरांत विश्व प्रसिद्ध विद्वानों और इतिहासकारों ने इस विषय में अपने जो अनुभव प्रकट किये हैं,वह प्रत्येक पक्ष से विलक्षण और अदभुत है।

डॉ॰ रोषन लाल आहुजाः–

वह श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के विषय में अपने विचार प्रकट करते लिखते हैं कि–'भाइ चारे और समाजवाद का बीज श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में फूटता प्रत्यक्ष नजर आता है।'धर्म राष्ट्र, सदाचार, मानवता के द्रोहियों को द्रोही कहने का इसमें साहस है,निडरता है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब ऐसे शीतल और मीठे जल का चश्मा है, जो निरन्तर बहता रहता है।इस जल के सेवन से हजारों दुखी आत्माओं को शान्ति मिलती है।

डंकन ग्रीन लीज के अनुसारः–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी भारतीय विचारधारा का स्रोत है। जितना अधिक से अधिक मैंने श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का अध्ययन किया है,उतनी ही अधिक इस पवित्र ग्रन्थ साहिब के बारे में मेरी प्यार भरी भावना बढ़ी है और बलवान हुई है।जो प्रेरणा और भावुक खूबसूरती श्री गुरु ग्रन्थ

साहिब में मिलती है शायद ही किसी और धार्मिक लिखत में मिलती होगी।

श्री मती पर्ल एस॰बक॰:–

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के विषय में अपने जज्बात प्रकट करती लिखती है, " श्री गुरु ग्रन्थ मनुष्य के अकेलेपन, उसकी इच्छाओं, प्रभावों और अकालपुरुख के साथ मिलन करने की भूख के प्रगटावे की ——पृ॰53 पुस्तक है।मैंने बड़े–बड़े धर्मों की धार्मिक रचनायें पढ़ी हैं परंतु मुझे उनमें दिल और मन को स्पर्श और प्रभावित करने वाली इतनी शक्ति नहीं लगी जितनी कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में महसूस हुई है। यह वाणी लम्बी होने के बावजूंद भी बड़ी गुँथी हुई है। परमात्मा का सबसे उत्तम और पवित्र संकल्प उभारती है और मानवीय शरीर की अमली आवश्यकताओं के अनुकूल है।

इखलाक हुसैन दिहलवी:–

वह श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के प्रति अपने अनुभव प्रकट करता कहता है कि पवित्र गुरु ग्रन्थ साहिब सिक्ख धर्म की ही एक सत्कारयोग्य धार्मिक पुस्तक नहीं ;बल्कि यह हिन्दुस्तान का सबसे प्रथम सैकुलर ग्रन्थ है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब से निजी पहचान और रब्बी पहचान की अनमोल दात प्राप्त होती है और रुहानियत की मस्ती का सरुर हासिल होता है, जिसके द्वारा मनुष्य 'इन्सान' बन जाता है, नही तो आदमी को भी मुयस्सर नहीं है इन्सान होना।

डॉ॰ मुहम्मद युसुफ आबासी:–

इनका विचार है कि 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी विश्व ज्ञान का खजाना है। गुरुवाणी तो विशाल समुद्र है, जहाँ प्रत्येक किस्म के अभिलाषी को मनभाते रत्न, हीरे, जवाहरात मिल सकते हैं। आज विश्व को एक धुरी से जुड़ने की आवश्यकता है और यह धुरा है अपना जंमीर, जिसकी आवाज सुनकर हम समस्त मुसीबतों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। गुरुवाणी इस ओर हमारा बढ़िया मार्गदर्शन करती है।'

प्रसिद्ध अमरीकी समाजषास्त्री और इतिहासकार श्री आरनलड तिआनबीः–

इनके अनुसार श्री गुरु ग्रन्थ साहिब मानवीय भाईचारा और सांझा आत्मिक खजाना है।इसलिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को जितने भी अधिक लोगों को सीधे सम्पर्क में लाया जा सके , लाया जाए।जितने भी धार्मिक ग्रन्थ मिलते हैं, इनमें से श्री गुरु ग्रन्थ साहिब से बढ़कर सत्कारयोग्य हस्ती रखते हैं ।जितना कुराण शरीफ मुसलमानों को, बाईबिल ईसाईयों को, तौराह यहूदियों को प्यारा लगता है क्योंकि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब सिक्खों के सदीवी गुरु हैं, आध्यात्मिक गाईड हैं।

श्री ठाकर देस राजः–

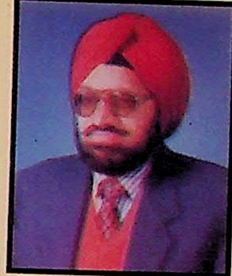
श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब से एक छोटे से छोटे मनुष्य से लेकर ब्राह्मण तक सब ने आत्मिक शान्ति प्राप्त की है।यही नहीं हजारों मुसलमानों ने भी श्री गुरु नानक देव जी की वाणी सुनकर उसको ग्रहण करके लाभ उठाया है ,उत्तर भारत के पतन की ओर बढ़ रहे समाज के लिये तो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब संजीवनी बूटी साबित हुए हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब द्वारा भारत का एक धर्म, एक जाति और एक मन कर देने का एक महान कदम उठाया गया था।

महान सिक्ख स्कॉलर और लेखक प्रौ. पूरन सिंहः–

वह श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की महानता को ऐसे कलमबंद करता है–'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी के सहारे सब व्यावहारिक रहे हैं। ऐसा कोई फकीर नहीं जो गुरुवाणी के राज का कायल नहीं पर सत्‌गुरु के सिक्खों को गुरुवाणी साधारण साहित रुप में नहीं दिखती।हमारी नसों और दिलों में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का पवित्र लहु चलता है। हम इस वाणी के द्वारा सजाए हुए हैं, यह हमारा करतार है।

(उपरोक्त समस्त हवाले लेखक की पुस्तक 'गैर सिक्खों के अनुमान–सिक्खी महान' के 14 वें ऐडीशन के पन्ना(पृष्ठ) 215 से 220 में लिये गये हैं।)





डॉ. ज्ञान सिंह मान

(शिरोमणि हिंदी साहित्यकार, पंजाब सरकार)

हिंदी जगत् का एक अत्यंत चर्चित, प्रख्यात एवं प्रबुद्ध साहित्यकार तथा वरिष्ठ शिक्षा-शास्त्री। विभिन्न विधाओं एवं विषयों पर लेखक की साठ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित।

पूर्व प्रिंसिपल गवर्नमेंट कॉलिज लुधियाना, डॉ. मान यूनिवर्सिटी की उच्चतम उपाधियों-पी-एच. डी. तथा डी. लिट् से विभूषित।

'मृग-तृष्णा' तथा 'सूना अम्बर' उपन्यासों तथा 'कथा एक मछंदर की' नाटक पर तीन बार राष्ट्रीय पुरस्कार।

'नानक अर्चन' (काव्य), 'एक रथ छह पहिये' (उपन्यास), 'बैरी मीत समान' (नाटक लेखन प्रकाशन एवं निर्देशन) के लिए चार स्टेट अवार्ड।

'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान' तथा 'हिन्दी गरिमा सम्मान' (उ.प्र.) द्वारा। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पन्द्रह से अधिक पुरस्कारों द्वारा अभिनंदित एवं आई.बी.सी. कैम्ब्रेज (इंग्लैड) तथा अमेरिकन वायोग्राफिक इंस्टीच्यूट (अमेरिका) द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से अलकृत डॉ. मान ने अमेरिका, कनाडा, इंग्लैड, फ्रांस तथा नेपाल आदि देशों के भ्रमण के दौरान भारतीय संस्कृति, अध्यात्म तथा ज्योतिष आदि विषयों पर शोध पत्र प्रस्तुत किए हैं।

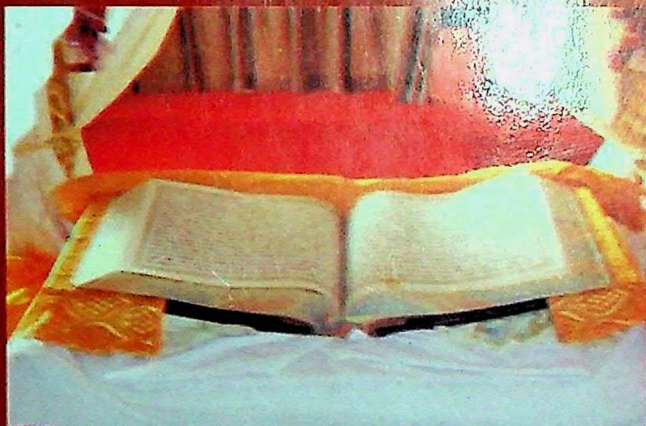
सम्प्रति : सदस्य-हिंदी सलाहकार समिति (भारत सरकार)

सम्पर्क : 1658, चौक करीम पुरा, लुधियाना (पंजाब) 141008

दूरभाष : 0161-2721161, 2408472

मोबाईल : +91 9814330472

ट्रस्टी : दिवश्री फाउंडेशन, लुधियाना





CLASSICAL
PUBLISHING COMPANY
28, SHOPPING CENTRE, KARAMPURA, NEW DELHI-110 015
Ph.: (O) 25465978, 65903449 (R) 28542847
E-mail : classicalpc@gmail.com

